उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

बी.ए. कर्मकाण्ड (षष्ठ सेमेस्टर)

BAKA(N)-223

(MINOR VOCATIONAL COURSE)

शिक्षणोत्तर संस्कार

मानविकी विद्याशाखा

भारतीय कर्मकाण्ड विभाग

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं .05946- 261122, 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

अध्यक्ष	**प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय**
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रोफेसर रेनू प्रकाश – निदेशक मानविकी विद्याशाखा उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	**प्रोफेसर श्याम देव मिश्र** अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ
डॉ.नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**प्रोफेसर प्रेम कुमार शर्मा** अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ. प्रभाकर पुरोहित असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), ज्योतिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	**डॉ. रत्न लाल शर्मा** अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार
डॉ. प्रमोद जोशी , असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी) **ज्यो**तिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	

सम्पादक	**सह सम्पादक**
डॉ. प्रभाकर पुरोहित असिस्टेन्ट प्रोफेसर(एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**डॉ. विजय प्रसाद रतूड़ी** असिस्टेन्ट प्रोफेसर(एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखक	**खण्ड**	**इकाई संख्या**
प्रो.रामानुज उपाध्य आचार्य वेद विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ नई – दिल्ली	1	1
डॉ. प्रभाकर पुरोहित असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	1/2	2, 5 /2 ,6,7
प्रो. देवेश कुमार मिश्र आचार्य संस्कृत विभाग इन्द्रागांधी रास्ट्रीय मुक्तविश्व विद्यालय नई- दिल्ली	1 /2	4/**1**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी सहायक प्राध्यापक वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	1	3
डॉ. विजय प्रसाद रतूड़ी असिस्टेन्ट प्रोफेसर(एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	2	3
डॉ. प्रमोद जोशी , असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी) **ज्यो**तिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	**2**	**4, 5**

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रथम संस्करण: 2025 **ISBN No. -**

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी **मुद्रक :**

नोटः - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी स्थित सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

शिक्षणोत्तर संस्कार MINOR VOCATIONAL COURSE BAKA(N) - 223

बी.ए.षष्ठ सेमेस्टर –(कर्मकाण्ड)

क्रम व इकाईयों के नाम		पृष्ठ संख्या
खण्ड 1	**शैक्षणिकोत्तर संस्कार**	**3-68**
इकाई 1	संस्कार विमर्श	3-22
इकाई 2	अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार	23 -33
इकाई 3	उपनयन संस्कार	34 -46
इकाई 4	वेदारम्भ संस्कार	47-55
इकाई 5	समावर्तन संस्कार	57-67
खण्ड 2	**विविध स्कन्ध**	**69-173**
इकाई 1	विवाह प्रयोजन एवं महत्व	70 -76
इकाई 2	विवाह संस्कार	77 -88
इकाई 3	विवाह के प्रकार	89 -102
इकाई 4	गुरु शुद्धि-वर-कन्या वरण तथा गुण दोष विचार	103 -117
इकाई 5	मण्डपाच्छादन	118 –131
इकाई 6	पाणिग्रहणसंस्कार विधि	132-156
इकाई 7	गृहस्थाश्रम की उपादेयता	157 –169

बी.ए. (षष्ठ सेमेस्टर)कर्मकाण्ड

MINORVOCATIONAL COURSE

शिक्षणोत्तर संस्कार

BAKA(N)-223

खण्ड 1 शैक्षणिकोत्तर संस्कार

इकाई 1 संस्कार विमर्श

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संस्कार विमर्श

1.3.1 संस्कार शब्द की परिभाषा

1.3.2 लोकप्रिय प्रयोजन

1.4 संस्कारों का भौतिक उद्देश्य

1.4.1 नवग्रह मण्डल रचना प्रकार

1.4.2 नवग्रह मण्डल पर ग्रहों की प्रतिमा, आकार एवं विशेष विचार

1.5 सारांशः

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0के0ए0-201 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई 'संस्कार विमर्श' से सम्बन्धित है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आप पूजन के सभी अंगों एवं विधियों से परिचित हो गये हैं। अतः अब आपको कुछ संस्कारों के विषय में भी ज्ञान कराया जायेगा जो मानव जीवन के अति महत्त्वपूर्णपक्ष हैं तथा जिनके बिना मानव जीवन की पूर्णता सम्पन्न नहीं होती है।

प्रस्तुत इस इकाई में पूर्व प्रतिज्ञात-विषय के अनुसार संस्कार शब्द की परिभाषा, संस्कारों की उपयोगिता (प्रयोजन) एवं उसके महत्त्वपूर्ण-पक्ष तथा संख्या आदि के विषय में आपको ज्ञान कराया जायेगा। जो वर्तमान समाज के लोगों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको संस्कारों के स्वरूप एवं महत्त्व तथा विविध प्रयोजनों का भी ज्ञान स्वतः हो जायेगा। आप जिसे समाज के सामने प्रस्तुत कर सनातन धर्म की रक्षा के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता के पथ को प्रशस्त करेंगे।

1.3 संस्कार विमर्श

अभी सर्वप्रथम संस्कारों के मूलस्रोत पर आपसे चर्चा करते हैं क्योंकि मूलस्रोत के विषय में जिज्ञासा स्वाभाविक है। तो देखें! संस्कारों का मूल स्रोत हमारे भारतीय वैदिक गृह्यसूत्र हैं। यहीं से यह धारा प्रवाहित होते हुए क्रमश: धर्मसूत्र, स्मृतिग्रन्थ, पुराणग्रन्थ, महाकाव्यों आदि में भी प्रवाहशील है। इसके बाद पद्धति, प्रयोगों, टीकाग्रन्थों के माध्यम से तथा आचार्य पुरोहितों के सुकण्ठ से प्रसृत वाणी के रूप में उसका आज भी हम कानों से रसास्वादन करते हैं।

1.3.1संस्कार शब्द की परिभाषा

किसी भी शब्द के प्राथमिक अर्थज्ञान के लिए सामान्यतः व्याकरण-शास्त्र के अनुसार धातु प्रत्यय आदि का विचार करना आवश्यकता है उसी प्रकार यहाँ भी सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है। परन्तु इतने अर्थ से आप को सन्तुष्ट नहीं होने देंगे। इसके लिए हम और आगे चलते हैं। यहाँ हम कुछ शास्त्रों की और आप को ले चलेंगे जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थों में संस्कार शब्द का प्रयोग हुआ है।

पूर्वाचार्यों के द्वारा संस्कार शब्द का प्रयोग विभिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में देखा जाता है। जैसे उदाहरण के लिए आप देखें! मीमांसाशास्त्र में यज्ञ के अंगभूत पुरोडाश की शुद्धि के लिए ही संस्कार शब्द का प्रयोग किया गया है।

'प्रोक्षणादिजन्यसंस्कारो यज्ञांगपुरोडाषेष्विति द्रव्यधर्मः'।

अद्वैतवेदान्त के आचार्य जीव परशारीरिकक्रियाओं के मिथ्या आरोप को संस्कार मानते हैं। जैसा कि - 'स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते'।

न्यायशास्त्र के आचार्य भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार मानते हैं। जिसका परिगणन वैशेषिक दर्शन में 24 गुणों के अन्तर्गत किया गया है। जैसे - **रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वद्रव्यत्वस्नेहषब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाधर्माधर्मसंस्काराष्चतुर्विंशतिर्गुणाः।**

उपरोक्त इन अर्थों से हमारा प्रयोजन यहाँ सिद्ध नहीं होता दीख रहा है अतः अब हम शास्त्रों से हटकर आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रवेश करते हैं, क्योंकि वहाँ भी संस्कार शब्द की चर्चा सुनी जाती है।

संस्कृत साहित्य में 'शुद्धि' के अर्थ में संस्कार शब्द का प्रयोग महाकवि कालिदास ने अपने कुमारसंभव नामक ग्रन्थ में किया है। यथा - '**संस्कारवत्येव गिरामनीषी तया स पूतष्च विभूषितश्च**'। इसी प्रकार आभूषण के अर्थ में भी संस्कार शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल नामक ग्रन्थ में कहा गया है-

स्वभाव सुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते। इसके अतिरिक्त प्रभाव या छाप इन अर्थों में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। जैसा कि 'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'।

उपर्युक्त अर्थों के अलावा मनुस्मृति का एक वचन हम प्रस्तुत करते हैं, शायद जो अर्थ हम चाहते हैं उसके निकट पहुँच जाये।

'कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह यः'

अर्थात् शरीर को पावन (पवित्र) बनाने के लिए धार्मिक अनुष्ठान की विधि ही संस्कार है। इस प्रकार इन अर्थों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यही बात सामने आती है कि जिस संस्कार की चर्चा हम करने जा रहे हैं उसका तात्पर्य यह है कि संस्कार, मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार एवं पूर्णता का प्रतीक है। शास्त्रोक्त विधि से अनुष्ठित संस्कार मानव में मानवता प्रदान करते हुए उसे समाजोपयोगी बनाते हैं। इसी बात का समर्थन वीरमित्रोदय नामक ग्रन्थ भी करता है। जैसा कि - आत्मशरीरान्तरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः। इस प्रकार मानवता की पूर्णता, शुद्धि एवं उसका समाज के लायक योग्यता संस्कार से ही सम्पन्न होती है। यही निष्कर्ष है।इसी बात को हम और स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर सा उदाहरण देते हैं धैर्यपूर्वक आप श्रवण करें।

संस्कार में दो प्रकार की वस्तुएँ देखने में आती है, एक प्राकृत दूसरी संस्कृत। प्रकृति ने जिस रूप में जिस वस्तु को पैदा किया वह उसी रूप में बनी रहे तो उसे प्राकृत वस्तु कहेंगे। जैसे पर्वत, जंगल के वृक्ष, नदी आदि। किन्तु प्रकृति के द्वारा पैदा की हुई वस्तु का अपने उपयोग में लाने के लिए जब हम कुछ सुधार करते हैं तब उस सुधरी हुई वस्तु को संस्कृत कहा जाता है। वह सुधार ही संस्कार है। अर्थात् अपने लिए तथा समाज के लिए उपयोगी बनाना ही संस्कार है तथा संस्कृत होकर वह व्यक्ति अपने में पूर्ण हो जाता है। उसे अन्य गुणों की अपेक्षा अब नहीं रह जाती है। यह संस्कार (सुधार) तीन प्रकार से होता है - दोषमार्जन, अतिशयाधान, हीनांगपूर्ति। इसें हम उदाहरण के साथ आगे बतायेंगे। जैसे -

लोहा जिस प्रकार खान से निकलता है ठीक उसी प्रकार उसका उपयोग हम आप नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह अति-मलिन होता है।यदि उससे तलवार बनानी हो तो उसका संस्कार करना पड़ता है। इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण जैसे - धान जिस प्रकार खेत से निकलता है ठीक उसी प्रकार हम उसका उपभोग (भोजन) नहीं कर सकते हैं उससे भूँसी उसका अलग करना ही पड़ेगा, फिर चावल बनाकर उसके साथ अन्य द्रव्यों के संयोग से हम उसे ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार हम पहले कह चुके हैं कि संस्कार में तीन बातें अतिमहत्त्वपूर्ण की हैं।

क. दोषमार्जन - अर्थात् उसे साफ करना (प्रकृति के द्वारा पैदा किए हुए पदार्थ में यदि कोई दोष हो तो अपने उपयोग में लाने के लिए सुधार करते हैं, जिसका नाम दोषमार्जन है।

ख. अतिशयाधान - उपयोगी बनाने के लिए कुछ विशेषता उत्पन्न कर देना ही अतिषयाधान है।

ग. हीनांगपूर्ति - फिर उपयुक्तता में कोई त्रुटि हो तो अन्य पदार्थ को मिलाकर उसकी पूर्ति करना ही हीनांगपूर्ति है।

एक और उदाहरण से इसे समझे - कपास के वृक्ष से प्राप्त मलिन कपास को साफ करना दोषमार्जन है, उससे कपड़ा (कुर्ता) बना लेना अतिशयाधान है, और बटन आदि लगाकर पहनने लायक बनाना यह हीनांगपूर्ति है। इसी प्रकार धान से भी भूसी अलग करना दोषमार्जन है। शुद्ध चावल को जल में मिलाकर अग्नि पर पकाना अतिशयाधान है अर्थात् खाने लायक रूप गुण उसमें लाना तथा उसे दाल सब्जी आदि के साथ भोजन करना यहीं हीनांगपूर्ति है।

ये ही बातें संस्कारों पर भी लागू होती है। गर्भाधान, जातकर्म, अन्नप्राश आदि संस्कारों के द्वारा मानव का दोषमार्जन होता है। चूडाकरण, उपयनयन आदि संस्कारों के द्वारा अतिशयाधान (विशेष गुण की स्थापना) होता है तथा विवाह, अग्न्याधान आदि संस्कारों के द्वारा हीनांगपूर्ति होती है।

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौंजी निबन्धनैः।

बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः निषेकादिद्विजन्मनाम्।

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।

इस प्रकार संस्कारों के इन्हीं तीनों गुणों से मानव अपने जीवन को पूर्ण करता है। तथा इस लोक में सुख शान्ति का अनुभव करते हुए शान्ति से परलोक सुख का भी आनन्द लेता है।

आज सभी मानव अपने को पूर्ण बनने की अभिलाषा रखते हैं और रखना भी चाहिए, जो वर्तमान समाज के लिए एवं स्वयं के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्पूर्ण है।

मित्रों! संसार में सभी वस्तुओं की यही दशा है। लोहा जिस रूप में खान से निकलता है उसे देखकर कोई आशा भी नहीं कर सकता, कि यह वस्तु हमारे बड़े काम की होगी, किन्तु बड़े बड़े कारखानों द्वारा पहले जिसका दोषमार्जन होता है तथा कुशल-कारीगरों से भिन्न-भिन्न रूप दिलवाकर तेज धार आदि दिलाकर अतिशयाधान अर्थात् विशेषता उसमें उत्पन्न की जाती है, फिर भी उपयोग में लाने के लिए तलवार में मूंठ (लकड़ी का पकड़ने के लिए) आदि लगाकर हीनांगपूर्ति जब कर ली जाती है, तब वह सुसंस्कृत लोहा हमारे लिए सभी प्रकार से उपयोगी सिद्ध होता है। जिस प्रकार आज अनुदिन नये नये आविष्कार बड़े गर्व के साथ भारतीय कौशल सम्पन्न कारीगर करते हैं, ठीक उसी प्रकार प्राचीन भारतीयों को भी यह अभिमान था कि हम संस्कार से मनुष्य को जैसा चाहे वैसा बना सकते हैं। अस्तु।

विषय को हम यहीं संक्षेप करते हैं अन्यथा विस्तृत हो जायेगा।

इस प्रकार हमारे जीवन में इन संस्कारों का आध्यात्मिक महत्त्व तो अत्यन्त उत्तम है, परन्तु इस वैज्ञानिक तथा तार्किक युग में उत्पन्न मानव-जाति के लिए भी इसे समझना एवं समझाना अत्यन्त आवश्यक है। जिसका दायित्व इस पाठ्यक्रम के अध्येता को है। अस्तु।

यहाँ संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि संस्कार, दोषमार्जन, अतिशयाधान, हीनांगपूर्ति रूप तीन गुणों से व्यक्ति को पूर्ण मानव की संज्ञा से विभूषित करता है।

संस्कार की परिभाषा के बाद हम इन संस्कारों का प्रयोजन क्या है? इसे आपको बताने जा रहे हैं। क्योंकि बिना प्रयोजन (उद्देश्य) के संसार में कोई भी व्यक्ति किसी भी काम में प्रवृत्त नहीं होता है। आप देखें। वेद के भी आदेशवाक्यों को मानने के लिए तथा उसमें मनुष्य को प्रवृत्त होने के लिए अर्थवाद वाक्य (प्रशंसावाक्य) ब्राह्मणग्रन्थों में भरे पड़े हैं, तथा जिनका उपयोग या प्रयोजन मात्र विधिवाक्य की स्तुति या प्रशंसा करके मानव को उस कर्म में लगाना है। उसी तरह यहाँ पर हम कहते

हैं कि संस्कार एक शास्त्रीय विधि है जिसे सभी मनुष्यों को अपनी पूर्णता के लिए करनी चाहिए, फिर भी आज वर्तमान समाज में विवाह एवं उपनयन के अलावा कोई भी संस्कार दिखाई नहीं देता है। अब तो कछ लोग कुल परम्परा को मानकर विवाह में ही उपनयन (जनेऊ) संस्कार कर देते हैं। जिसका फल विवाह संस्कार तक वह मनुष्य पतित हो जाता है। इन संस्कारों में भी केवल नाम मात्र की ही शास्त्रीय विधि रह गई है शेष आप सब जान ही रहे हैं, जिस के कारण ही आज वर्तमान भारत की दुर्दषा हमें देखनी पड़ रही है। आज कोई भी मानव संस्कारों से संस्कृत नहीं है। जिसका फल उसका नारकीय-जीवन या पशुओं की तरह जीवन जीने के लिए वह बाध्य है। द्रव्योपार्जन में तो अपना सम्पूर्ण जीवन लगा ही देता है, फिर भी सुख या शान्ति उसे नहीं मिलती। वह चैन के लिए हमेशा बेचैन रहता है। कितना भी दुख कहा जाय कम ही है अस्तु।

अतः अब कुछ नई चर्चा संस्कारों के प्रयोजन से सम्बद्ध करने जा रहे हैं। ध्यान से देखें।

1.3.2लोकप्रिय प्रयोजन

लोकप्रिय प्रयोजन पर विचार करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि मानव समाज में प्राचीन काल से ही यह धारणा थी कि कुछ ऐसे भी अमंगल तत्त्व है जिनसे रक्षा करना हमारा परम दायित्व है। लोगों की धारणा थी कि किसी भी महत्त्वपूर्ण अवसर पर व्यक्ति के जीवन में वे अमंगल तत्त्व (भूत-प्रेतादि) हस्तक्षेप कर सकते हैं अतः अमंगलजनक प्रभावों के निराकरण के लिए तथा हितकर प्रभावों की प्राप्ति के लिए प्राचीन लोग प्रयत्न किया करते थे, जिससे मनुष्य बिना किसी बाह्य विघ्न के अपना विकास और अभिवृद्धि कर सके और देवों तथा दिव्य शक्तियों से सामयिक निर्देश एवं सहायता प्राप्त कर सके। संस्कारों के अनेक अंगों के मूल में यही विश्वास रहे हैं। आइए कुछ उदाहरण से इसे हम और स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे यहाँ संस्कारों में अवांछित प्रभावों का निराकरण के लिए गृह्यसूत्रों में संस्कारों के अन्तर्गत, अनेक साधनों का अवलम्बन करने का निर्देश मिलता है। इनमें प्रथम-स्थान, आराधना का है। आराधना सबसे पहले अशुभ निवारण शक्तियों की जाती है। जैसे तत्कालीन समाज में अशुभ शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए उन्हें बलि तथा भोजन दिया जाता था जिससे वे तृप्त होकर बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए लौट जाये। गृहस्थ अपनी पत्नी और बच्चों की रक्षा के लिए सदा चिन्तित रहता था। तथा भूतप्रेतादिकों की निवृत्ति अपना परम कर्तव्य समझता था। जैसे स्त्री के गर्भिणी रहने के समय या शैशव काल में बालक के ऊपर होने वाली बाधाओं के समय पिता कहता था कि ''शिशुओं पर आक्रमण करने वाले कूर्कुर सकुर्कूर शिशु को मुक्त कर दो। हे सीसर मैं तुम्हें बलि देकर अपनी स्तुति से प्रसन्न करना चाहता हूँ जिससे इस बालक का अनिष्ट दूर हो जाय।

पारस्करगृह्यसूत्र के टीकाकार आचार्य गदाधर कहते हैं ''ततस्तुष्टः सन् एनं एनं कुमारं मुंचय' आदि मन्त्र पढ़े जाते थे।

इसी तरह जातकर्म संस्कार के समय शिशु का पिता कहता है कि हे! शण्डामर्क उपवीर शौण्डिकेय, उलूखल मलिम्लुच द्रोणास और च्यवन तुम सभी यहाँ से अदृश्य हो जाओ। ऐसा मन्त्र पढ़कर स्वाहा अर्थात् घृत से आहुति देता है।

गृहस्थ देवताओं से भी अशुभ प्रभावों के निवारण के लिए प्रार्थना करता था। चतुर्थी-कर्म के अवसर पर नव विवाहिता पत्नी के घातक तत्त्वों के निवारण के लिए अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, गन्धर्व आदि देवों का आवाहन एवं पूजन करता था। इस तरह के असंख्य उदाहरण है। हमारा प्रयोजन यहाँ प्रसंगवश संकेत कर देने से है।

जिस प्रकार अवांछित प्रभावों के निराकरण के लिए संस्कार किये जाते थे, ठीक उसी प्रकार अभीष्ट प्रभावों के आकर्षण के लिए भी संस्कारों का विधान बताया गया है शास्त्रों में।

हम सामान्य रूप से देखते हैं कि प्राचीन लोगों का यह विश्वास था कि जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी देवता द्वारा अधिष्ठित है। अर्थात् उस काल में अमुक देवता उसकी रक्षा करते हैं। अतः अवसर उपस्थित होने पर उस देवता की स्तुति या आराधना अवश्य की जाती थी। जैसे गर्भाधान के समय विष्णु प्रधान देवता है, विवाह के समय प्रजापति और उपनयन के समय बृहस्पति इत्यादि। तत् तत् कालों के उपस्थित होने पर इनकी पूजा की जाती थी। यही नहीं शुभ वस्तुओं के स्पर्श से भी वे मंगल परिणाम की आशा करते थे। जैसे सीमन्तोन्नयन संस्कार के समय उदुम्बर वृक्ष की शाखा का पत्नी के गले से स्पर्शकराया जाता था क्योंकि यह विश्वास था कि उसके स्पर्श से स्त्री में उर्वरता (सन्तति प्रजनन) की क्षमता आयेगी। जैसे - औदुम्बरेण त्रिवृतमाबध्नाति - अयमूर्जावतो वृक्षः उज्ज्रींव फलिनी भव' इसी प्रकार सन्तति प्रजनन के लिए पत्नी की नाक के दायें छिद्र में दूरव्यापी जड़वाले विशाल वटवृक्ष के कोपल का रस छोड़ा जाता था। अस्तु।

अब हम इसके अतिरिक्त कुछ दूसरे प्रयोजनों पर भी विचार करते हैं -

1.4 संस्कारों का भौतिक उद्देश्य

संस्कारों का भौतिक उद्देश्य धन-धान्य-पशु-सन्तान-दीर्घजीवन-सम्पत्ति-समृद्धि-शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। चूँकि संस्कार गृह्यकृत्य थे, और स्वभावतः उनके अनुष्ठान के समय घरेलू जीवन के लिए आवश्य सभी वस्तुओं की प्रार्थना देवताओं से की जाती थी। हमारे भारतीय जनों का यह विश्वास था कि आराधना एवं प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं को देवता जान लेते हैं, तथा समय पर प्रदान भी करते हैं। क्योंकि वे (देवता) सर्वज्ञ होते हैं। अतः संस्कारों में प्रायः इससे सम्बद्ध

बहुत सारी प्रार्थनायें आती हैं। जैसे विवाह में सप्तपदी के अवसर पर ''एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु, द्वे उर्ज्जे त्रीणि रायस्योषाय चत्वारि मायोभवाय, पंच पंषुभ्यः षड् ऋतुभ्यः'।

इस प्रकार भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति भी एक प्रकार से संस्कारों का मुख्य प्रयोजन था।

अब हम आपको कुछ आचार्यों के पास ले चलेंगे जिन्होंने भी संस्कारों के प्रयोजन के विषय में कुछ कहा है जिन्हें संक्षेप में उनके भावसौरभ की सुगन्ध आप तक चहुँचाने का प्रयत्न करता हूँ।

सांस्कृतिक प्रयोजन

संस्कारों के लोकप्रिय प्रयोजन को पूर्णतः स्वीकार करते हुए महान् लेखकों एवं धार्मिक विधिनिर्माताओं ने उनमें उच्चतर धर्म और पवित्रता का समावेश करने का प्रयास किया है। जिसमें सर्वप्रथम आचार्य मनु की चर्चा प्रस्तुत की जा रही है। आचार्य मनु कहते हैं कि गार्भहोम (गर्भाधान के अवसर पर किये जाने वाले होम आदि) जातकर्म चूडाकर्म (मुण्डन) और मौंजीबन्धन (उपनयन) संस्कार के अनुष्ठान से द्विजों के गर्भ तथा बीज सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।

गार्भैहोमैर्जातकर्म चौडमौंजी निबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।

आचार्य याज्ञवल्क्य भी ठीक इसी मत का समर्थन करते हैं।

प्राचीन लोगों का विश्वास था कि बीज और गर्भाधान, अपवित्र अर्थात् अशुद्ध होता है। इनकी पवित्रता जातकर्म आदि संस्कारों से ही सम्भव है। जैसा कि आज भी हमलोग संस्कार के शुभ संकल्प के सुअवसर पर ''बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणोजातकर्मादिजन्य' इसी मूल वाक्य का पदान्तर प्रक्षेप के साथ पाठ करते हैं। इस प्रकार यह भी एक संस्कार का परम प्रयोजन था। आचार्य अंगिरा भी इसे प्रकारान्तर से इस प्रकार कहते हैं-

चित्रकर्म यथानेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।।

अर्थात् चित्र निर्माण करते समय विविध रंगों की आवश्यकता होती है तत् तद् अंगों के निर्माण के लिए, ठीक उसी प्रकार विविध संस्कारों के द्वारा ही मानव की पूर्णता सम्पन्न होती है।

आचार्य शंख लिखते हैं कि संस्कारों से संस्कृत आठ आत्मगुणों से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। जिससे वह कभी गिरता नहीं है।

संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरुत्तरैरनुसंस्कृतः।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्राह्मलौकिकः।

ब्राह्मं पदमवाप्नोति यस्मान्नच्यवते पुनः।।

इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कारों का प्रयोजन स्वर्ग तथा मोक्ष लाभ भी था। हो भी क्यों न, मोक्ष को तो जीवन का चरम उद्देश्य हमारे ऋषियों ने माना है। मोक्षप्राप्ति में पहले स्वस्वरूप ज्ञान, गुरु के 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के उपदेश से होता है, फिर 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होता है इसके बाद जीव संसार से मुक्त होकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। क्योंकि मोक्ष में भी कारण, ज्ञान ही है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'। यह ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश से ही संभव है। अस्तु।

1.4.1नैतिक प्रयोजन

हमारे भारतीय संस्कारों का एक नैतिक प्रयोजन भी है जिसकी आज के समाज में अत्यन्त आवश्यकता है।

आचार्य गौतम चालीस-संस्कारों को गिनाने के पश्चात् आत्मा के (मनुष्य) आठ गुणों का उल्लेख करते हैं - क. दया, ख. क्षमा, ग. अनुसूया, घ. शौच ङ. शम, च. उचित व्यवहार, छ. निरीहता, ज. निर्लोभता।

वे आगे कहते हैं के जिस व्यक्ति ने 40 संस्कारों का अनुष्ठान तो किया है, किन्तु आठ आत्मगुणों का जिसमें अभाव है उसके सारे 40 संस्कार निरर्थक हैं।

अर्थात् आचार्य गौतम के अनुसार संस्कारों का नैतिक प्रयोजन ही सर्वश्रेष्ठ है। जिसका अनुभव हम आज के समाज में अनुदिन करते हैं। व्यक्ति पढ़-लिखकर साक्षर तो हो जाता है पर नैतिक दायित्वों के अभाव में शुद्ध रूप से मनुष्य भी उसे नहीं कहा जा सकता है। इसलिए संस्कारों का परम प्रयोजन नैतिक गुणों की प्राप्ति से है जिन्हें विकसित करना वर्तमान समाज में अत्यन्त आवश्यक है। आज भी इन संस्कारों से हम नैतिक सद्गुणों की वृद्धि की अपेक्षा अवश्य ही रखते हैं।

1.4.2 व्यक्तित्व का निर्माण और विकास

आज देश को सबसे बड़ी आवश्कयता चरित्रवान्, व्यक्ति या समाज की है। उसे हम व्यक्तित्व के निर्माण की भी संज्ञा प्रकारान्तर से दे सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इस देश में जितना ही संस्कारों का ह्रास हुआ, उतना ही चरित्र या व्यक्तित्व का पतन हुआ। वह दिन दूर नहीं जब लाखों व्यक्ति में कोई एक चरित्रवान् होगा। प्राचीन काल में आधुनिक सुविधा के अभाव में लोग भले ही वैभव सम्पन्न कम होते थे, साक्षर कम होते थे, लेकिन चरित्रहीन पथभ्रष्ट कम होते थे उनमें संस्कारों का ही प्रभाव था, जिससे कभी भी वे अपने स्थान से या अपने सिद्धान्त से हट नहीं सकते थे। तथा ये संस्कार उनके चरित्र की रक्षा सदैव करते थे।

आइये हम एक दो उदाहरण से इसे और भी स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

आप अनुभव करेंगे, संस्कार जीवन के प्रत्येक भाग को व्याप्त कर लेते हैं। ये संस्कार इस प्रकार व्यवस्थित किये गये है कि जीवन के आरम्भ से ही व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाता है। आदिकाल से ही संस्कार जीवन में मार्गदर्शन का कार्य करते थे। जो आयु बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन की एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाते थे। उसका परिणाम होता था कि एक संस्कृत (संस्कारवान्) मनुष्य के लिए अनुशासित जीवन व्यतीत करना आवष्यक होता था, तथा उसकी शक्तियाँ सुनियोजित एवं सोद्देश्य धारा में प्रवहमान रहती थी जिससे वह चरित्रवान् होता था।

हम शास्त्रों में देखते हैं कि गर्भाधान संस्कार उस समय किया जाता था जब पति पत्नी दोनों शारीरिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ होते थे तथा परस्पर एक दूसरे के हृदय की बात जानते और दोनों में सन्तान प्राप्ति की वेगवती इच्छा होती थी। उस समय उनके समस्त विचार गर्भाधान की ओर केन्द्रित होते और होम के साथ वैदिकमन्त्रों के उच्चारण से शुद्ध तथा हितकर वातावरण तैयार कर लिया जाता था। स्त्री जब गर्भिणी होती तो दूषित शारीरिक व मानसिक प्रभावों से उसे बचाया जाता और उसके व्यवहार को इस प्रकार अनुशासित किया जाता था कि जिसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़े। यहाँ प्रसंगवश कश्यप अदिति के संवाद का एक सूक्ष्म भाग आप से कहने जा रहा हूँ। अन्यथा आप सोचेंगे कि प्राचीनकाल में गर्भिणी के लिए कौन सा अनुशासन था? यह कथा पद्मपुराण में आयी है-

कश्यप अदिति से कहते हैं - गर्भिणी को अपवित्र स्थान चूने बालू आदि पर नहीं बैठना चाहिए। नदी में स्नान नहीं करना चाहिए। उसे मानसिक अशान्ति से सदैव अपने आपको बचाना चाहिए। उसे सदा निद्रालु या आलस्य नहीं करना चाहिए। अपने केश को खुले नहीं छोड़ने चाहिए। सोते समय उत्तर की ओर सिर नहीं करना चाहिए। अमंगल शब्दों का व्यवहार, अधिक हँसना सायंकाल में भोजन, आदि गर्भिणी को नहीं करना चाहिए। इन नियमों के पालन से ही जन्म लेने वाला बालक भी अपने जीवन में अनुशासित एवं चरित्रवान उत्पन्न होता है।

एक बात और अच्छी है कि, न केवल गर्भिणी के लिए ही ये नियम बनाये गये थें अपितु उसके पति के लिए भी कुछ नियम है जो अनिवार्यतः पालनीय होते थे। जैसे -

वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद् गर्भिणीपतिः।
श्राद्धं च सप्तमान्मासदूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित्।।

अर्थात् क्षौरकर्म, मैथुन तीर्थ सेवन श्राद्ध आदि गर्भिणी के पति को नहीं करना चाहिए। अस्तु।
इस प्रकार के नियम यदि आज भी लोग करें तो अवश्य ही अच्छी सन्तान उत्पन्न होगी।
हाँ तो हमलोग संस्कारों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता की चर्चा कर रहे थे, परन्तु कुछ दूर भी चले गये थे। आइए हम अपने विषय पर फिर से आते है।

शिशु के जन्म होने पर आयुष्य तथा प्रज्ञाजनन कृत्यों का अनुष्ठान किया जाता था और नवजात शिशुको पत्थर के समान दृढ एवं परशु की तरह शत्रुनाशक, बुद्धिमान तथा चरित्रवान् होने का आशीर्वाद दिया जाता था।

शैशव में प्रत्येक अवसर पर आशापूर्ण जीवन के प्रतीक आनन्द और उत्सव मनाये जाते थे। चूडाकरण या मुण्डन संस्कार के पश्चात् जब शिशु बालक की अवस्था में पहुँच जाता, तो उसे बिना ग्रन्थो के अर्थात् श्रुतिपरम्परा से अध्ययन तथा विद्यालय के कठोर नियन्त्रण में ही उसके कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से उसका परिचय कराया जाता था।

उपनयन तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी संस्कार ऐसी सांस्कृतिक अग्नि का काम करते थे, जिसमें तपाकर बालक के अपनी अभिलाषाओं इच्छाओं को पिघलाकर अभीष्ट साँचे में ढाल दिया जाता था और अनुशासित, किन्तु प्रगतिशील और परिष्कृतजीवन व्यतीत करने के लिए उसे तैयार किया जाता था।

इस प्रकार निःसन्देह संस्कारों में अनेक ऐसी विधियाँ हैं जिनकी उपयोगिता मेरे विश्वास पर ही अवलम्बित नहीं है। किन्तु संस्कारों के मूल में निहित सांस्कृतिक उद्देश्यों के माध्यम से व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव को आज भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, भले ही किसी पूर्ण वैज्ञानिक व व्यवस्थित योजना में उनकी गणना न हो सके।

इन संस्कारों के नियमों को कठोर बनाने की अनिवार्यता का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को संस्कृत एवं चरित्र की दृष्टि से समाज का एक रूप विकास तथा उसे समान आदर्ष से अनुप्राणित करना था। इस प्रयास में वे बहुत दूर तक सफल भी रहे। आज भी जिसका परिणाम कहीं यत्र तत्र देखने को मिलता है।

अब हम आपसे संस्कारों के एक और महत्त्व आध्यात्मिक महत्त्व की चर्चा भी अत्यन्त संक्षेप में करेंगे क्योंकि संस्कारों के आध्यात्मिक महत्त्व ही हमें जीवन में विशेष रूप से अनुभव होते हैं एवं धर्म पथ पर आरूढ होकर हमारे आगे की जीवन यात्रा को सुगम बनाते हैं।

आज भी संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। इनके द्वारा संस्कृत व्यक्ति यह अनुभव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वस्तुतः संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैहिक क्रियाएँ आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्राणित है। यही वह मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था। जीवन की इस पद्धति में शरीर और उसके कार्य बाधक नहीं, पूर्णता की प्राप्ति में सहायक हो सकते थे। इन संस्कारों के अनुष्ठानों से सात्विक भावों के उदय होते ही जीव मनुष्यभाव से देवभाव की ओर अग्रसर हो

जाता है, जो जीवन का वास्तविक सुगम पथ है।

इस प्रकार हमारे भारतीयों का यह दृढ विष्वास था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से वे जीव दैहिक बन्धन से मुक्त होकर मृत्युसागर को पार कर लेते हैं। शायद इसीलिए ईषोपनिषद् में कहा गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

अर्थात् जो विद्या तथा अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। यहाँ अविद्या का अर्थ संस्कार, यज्ञादि अनुष्ठानों से है। तथा विद्या का तात्पर्य देवता ज्ञानरूपाविद्या।

इसका सार यह है कि (अविद्या) अर्थात् कर्म से चरित्र की शुद्धि और विद्या अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय मन तथा बुद्धि की वृत्तियों से सदसद्विवेक, उपासना, श्रवण, मनन आदि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि को प्राप्त कर जीव अमृतत्व को प्राप्त करता है। चरित्रशुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ही ज्ञानोपलब्धि होती है जिससे जीव संसार से मुक्त होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है।

इस प्रकार यहाँ विविध संस्कारों से व्यक्ति की चारित्रिक शुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होती है। यही इसका आध्यात्मिक महत्त्व है।

यहाँ आप संस्कारों के विषय में बहुत कुछ जान चुके हैं क्यों न आपसे कुछ प्रश्न कर लिया जाय क्योंकि आप भी बताने के लिए उत्सुक नजर आ रहे हैं तो लीजिए आपके लिए कुछ बोधप्रश्न नीचे दिये जा रहे हैं, जिनका उत्तर आपको देना है-

बोधप्रश्न

1. संस्कारों के मूल स्रोत कौन से ग्रन्थ हैं?
2. संस्कार शब्द में कौन सा उपसर्ग है?
3. ‘आत्मव्यंजक शक्ति ही संस्कार है’ यह मत किस शास्त्र का है?
4. ‘कुमारसंभव’ ग्रन्थ में संस्कार शब्द का क्या अर्थ है?
5. संस्कार में कौन सी तीन बातें अतिमहत्त्वपूर्ण की हैं?

1.5 संस्कारों की संख्या

संस्कारों के महत्त्व ज्ञान के बाद, इन संस्कारों की संख्या के विषय में भी जानना आवश्यक है। क्योंकि शास्त्रों में संस्कारों की संख्या को लेकर भिन्न-भिन्न मत देखे जाते हैं।

आइये! हम संस्कारों की संख्या के विषय में शास्त्रों का मत जानते हैं।

यह तो हम जानते ही हैं कि मुख्य रूप से संस्कारों का उद्भव गृह्यसूत्रों से हुआ है। अतः इसी क्रम से सर्वप्रथम आश्वलायन गृह्यसूत्र में प्रवेश करते हैं। यह आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। इसमें चार अध्याय हैं, जिनमें संस्कारों, कृषिकर्मों एवं पितृमेघ आदि धार्मिक कृत्यों का प्रधान रूप से वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध है। परन्तु संस्कारों की चर्चा अल्पमात्रा में ही वहाँ देखी जाती है। अतः आश्वलायन गृह्यसूत्र में 11 संस्कारों का वर्णन मिलता है जो निम्नलिखित हैं।

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. चूडाकरण, 8. अन्नप्राशन, 9. उपनयन, 10. समावर्तन, 11. अन्त्येष्टि।

बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार

यह गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस गृह्यसूत्र में 13 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जो निम्नलिखित है-

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. उपनिष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूडाकर्म, 10. कर्णवेध, 11. उपनयन, 12. समावर्तन, 13. पितृमेघ।

यह प्रायः दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। जो कृष्णयजुर्वेदी है उनके लिए ये संस्कार हैं। उसी प्रकार आश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णित संस्कार ऋग्वेदीय शाखा वालों के लिए है, परन्तु हमलोगों के यहाँ उत्तरभारत में शुक्लयजुर्वेद की ही प्रधानता है। जिसके गृह्यसूत्र का नाम पारस्करगृह्यसूत्र हैं। हमलोगों का यही एक गृह्यसूत्र है। इसी गृह्यसूत्र में वर्णित संस्कारों का अनुपालन हमलोग अक्षरश: करते हैं। अतः अन्य गृह्यसूत्रों से हमारा कोई विशेष प्रयोजन यहाँ नहीं है मात्र जानकारी के लिए आपको यहाँ दिखाया गया है। अतः हमें तो पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ही संस्कार करना या कराना चाहिए। यह पहले भी होता था, आज भी हो रहा है, जिसके लिए आचार्यों द्वारा पद्धतियाँ बना दी गई है, जिनका अनुपालन कर्मकाण्डियों या पुरोहितों के द्वारा समाज में हो रहा है।

पारस्कर गृह्यसूत्र के रचयिता महर्षि पारस्कर है। यह गृह्यसूत्र, शुक्लयजुर्वेद के दोनों शाखाओं (काण्व एवं माध्यन्दिन) का प्रतिनिधित्व करता है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। पुनः प्रत्येक काण्ड का अवान्तर विभाजन कण्डिकाओं में है। कण्डिकाओं की कुल संख्या 51 हैं।

इसमें प्रधान रूप से 13 संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। जो निम्नलिखित हैं।

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. निष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूडाकर्म, 10. उपनयन, 11. केशान्त, 12. समावर्तन, 13. अन्त्येष्टि।

ये जितने संस्कार विभिन्न गृह्यसूत्रों में बताये गये हैं वे सब सूत्रषैली में निबद्ध हैं। इनके विशेष नियम धर्मसूत्रों में भी यत्र- तत्र कहे गये हैं। अब आप पूछेंगे कि धर्म सूत्र क्या है?

कल्पसूत्र या कल्पशास्त्र (जो वेद के हस्त रूप अंग है, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते)। वेद के हस्तस्थानिक अंग है। इसीलिए कल्पशास्त्र की परिभाषा करते हुए आचार्य कहते हैं - 'कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्' अर्थात् जिनमें वेदविहित कर्मों का सुव्यवस्थित रूप से वर्णन हैं उसे कल्पशास्त्र कहते हैं।

इसी कल्पशास्त्र का वर्गीकरण प्रमुख रूप से चार श्रेणियों में किया गया है - श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

हम यहाँ गृह्यसूत्र में संस्कारों पर चर्चा आपसे की जो सूत्ररूप में निबद्ध हैं। इसके बाद कुछ धर्मसूत्रों की भी यात्रा हम करेंगे। पहले गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र का भेद समझे।

विषयवस्तु एवं प्रकरणगत साम्य देखकर दोनों (गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र) में घनिष्ठ सम्बन्ध और अभिन्नता जैसी प्रतीति होती है किन्तु वस्तुतः इनमें सूक्ष्म अन्तर है। गृह्यसूत्र प्रायः गृहस्थजीवन की चर्चा से सम्बद्ध है इनमें मानवीय आचारों, अधिकारों, कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसके विपरीत धर्मसूत्रकारों का मुख्य उद्देश्य है आचार, विधि, नियम, क्रिया एवं संस्कारों की विधिवत् चर्चा करना। यद्यपि धर्मसूत्रों में भी विवाह प्रभृति संस्कारों, अनध्याय दिनों, श्राद्ध, मधुपर्क आदि के विषय में नियम पाये जाते हैं, तथापि गृह्यजीवन के क्रियाकलापों की चर्चा बहुत न्यून है।

अब हम धर्मसूत्रगत कुछ संस्कारों की संख्या पर विचार करेंगे।

गौतमधर्मसूत्र में आठ आत्मगुणों के साथ 40 संस्कारों का वर्णन है। (चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टौ आत्मगुणाः) जो अधोलिखित है-

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, स्नान, सहधर्मचारिणी संयोग, 5 महायज्ञ, सात पाकयज्ञ (अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावणी आग्रहायणी चैत्री आष्वयुजी) सात हविर्यज्ञाः (अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्षपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरुढपषुबन्ध, सौत्रामणी) सप्तसोमसंस्था (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडषी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम) इत्येते चत्वारिंषत् संस्काराः। यस्यैते चत्वारिंशत् संस्कारा अष्टावात्मगुणाष्च स ब्राह्मणो ब्रह्मणे सायुज्यमाप्नोति।

इन चालीस संस्कारों में आपको सन्देह होगा कि कुछ तो संस्कार है, परन्तु कुछ याग विशेष है तो क्या याग एवं संस्कार एक ही वस्तु है। या याग एवं संस्कार में कोई अन्तर है? इसके समाधान

के लिए स्मृतिग्रन्थों को देखना चाहिए। संस्कार दो प्रकार के हैं - ब्राह्म एवं दैव। इसकी व्याख्या अभी किया जा रहा है।

स्मृति ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या

हारीत स्मृति के अनुसार - दो प्रकार के संस्कार कहे गये हैं 1. ब्राह्म 2. दैव। गर्भाधान आदि ब्राह्मसंस्कार हैं तथा (सप्तपाकसंस्था आदि याग) दैवसंस्कार हैं।

आगे चलकर स्मृतियों में यज्ञों का समावेश दैवसंस्कारों के अन्तर्गत माना गया। क्योंकि न केवल ब्राह्म (गर्भाधानादि) संस्कारों को ही यथार्थ संस्कार समझना चाहिए। निःसन्देह यज्ञ भी परोक्षरूप से पवित्र करने वाले संस्कार स्वरूप माने जाते हैं। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। किन्तु उनका (यागों) मुख्य प्रयोजन था देवों की आराधना, जबकि संस्कारों का प्रधान ध्येय संस्कार्य व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा जीवन को संस्कृत करना। जैसा कि **मनु ने कहा है - 'संस्कारार्थं शरीरस्य'।**

बाद में चलकर स्मृतियों में संस्कार शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं धार्मिक कृत्यों के अर्थ में किया गया है, जिनका अनुष्ठान व्यक्ति के व्यक्तित्व की षुद्धि के लिए किया जाता था। आचार्य मनु के अनुसार भी गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त 13 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जो निम्नलिखित है - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्तन, विवाह।

आचार्य अंगिरा के अनुसार संस्कारों की संख्या 25 होनी चाहिए। यथा-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो बलिरेव च।
जातकृत्यं नामकर्म निष्क्रमोऽन्नाषनं परम्।।
चौलकर्मोपनयनं तद्व्रतानां चतुष्टयम्।
स्नानोद्वाहौ चाग्रयणमष्टकाष्च यथायथम्।।
श्रावण्यामाष्वयुज्यां च मार्गषीर्ष्यां च पार्वणम्।
उत्सर्गष्चाप्युपाकर्म महायज्ञाष्च नित्यषः।।
संस्कारा नियता ह्येते ब्राह्मणस्य विषेषतः।
पंचविंशति संस्कारैः संस्कृता ये द्विजातयः।।

ते पवित्राश्च योग्याश्च श्राद्धादिषु सुयन्त्रिताः इति।

इस प्रकार महर्षि अंगिरा के अनुसार भी सामान्यतः संस्कारों में कुछ याग विशेषों को समाविष्ट कर संस्कारों की 25 संख्या निर्धारित की गई है। अस्तु।

संस्कारों की संख्या के क्रम में हमें अभी तक 11, 13, 25, 40 आदि संख्या गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृतिग्रन्थों के आधार पर हमने निर्धारित की, जिनका हमने सप्रमाण नाम गिनाये। परन्तु वर्तमान समाज में 16 संस्कारों की प्रसिद्धि प्रायः लोगों से सुनी जाती है। उसका मूल क्या है? इसके उत्तर में हम आपको व्यास स्मृति की ओर ले चलते हैं।

महर्षि व्यास के अनुसार संस्कार मुख्य रूप से सोलह (16) है।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राषनं वपनक्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेषो वेदारम्भ क्रियाविधिः।
केशान्तः स्नान उद्वाहो विवाहोऽग्नि परिग्रहः।।
त्रेताग्नि संग्रहश्चैव संस्काराः षोडशस्मृताः।

इस प्रकार संस्कारों की संख्या में भेद होने पर यह कैसे निश्चित होगा कि कितने संस्कार है तथा हमें कितनी करनी चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर के लिए महर्षि अंगिरा का यह वचन अत्यन्त प्रामाणिक है।

स्वे स्वे गृहे यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः।
कर्तव्या भूतिकामेन नान्यथा भूतिमृच्छति।।

अर्थात् अपने अपने गोत्र परम्परा शाखा के अनुसार अपने अपने गृह्यसूत्र में जितने संस्कार वर्णित है उन्हीं संस्कारों को करना चाहिए । इसका अभिप्राय यह है कि शुक्लयजुर्वेद के माध्यन्दिन शाखा वाले के द्विजातियों को पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार 13 संस्कार करना चाहिए। अतः मुख्य रूप से हमारे यहाँ 13 संस्कार सरलतया आचार्यों के द्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं। यदि हम दूसरी शाखा के अनुसार 40, 11, 25 आदि संस्कारों को करते हैं तो हमारी हानि होगी। इसके लिए आचार्य वसिष्ठ ने स्पष्ट ही लिखा है-

न जातु परशाखोक्तं बुधः कर्म समाचरेत्।
आचरन् परशाखोक्तं शाखारण्डः स उच्यते।।

अर्थात् जो अपनी शाखा के संस्कारों को छोड़कर दूसरे की शाखा में वर्णित संस्कारों को करता या कराता है वह शाखारण्ड दोष युक्त हो जाता है। अर्थात् कुल परम्परा प्राप्त शाखा के विरुद्ध नहीं करना चाहिए। इससे यही बात स्पष्ट हुई कि उत्तर भारत में प्रसिद्ध शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनशाखा वालों को 13 संस्कार ही करना चाहिए। जिसका विधान पारस्करगृह्यसूत्र में हुआ है। भिन्न भिन्न (शाखा भेद) वेद शाखा के अनुसार ही आचार्यों द्वारा कहा गया संस्कारों की संख्या में भेद है। अतः अपनी कुल परम्परा प्राप्त वेदशा शाखा के अनुसार संस्कार करना चाहिए। प्रसंग में एक बात और जान

लीजिए कि किनका किनका संस्कार होना चाहिए अर्थात् इन संस्कारों के अधिकारी कौन लोग है। इसके लिए याज्ञवल्क्य का वचन प्रमाणरूप में उपस्थित करता हूँ -

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।
निषेकाद्याः ष्मषानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया।।

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य को द्विज कहा जाता है। अतः इनका गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक का संस्कार मन्त्रपाठपूर्वक करना चाहिए। एवं शूद्र तथा स्त्रियों का जाकर्मादि संस्कार मन्त्र रहित करना चाहिए। अर्थात् ये स्वयं संस्कृत होते हैं इनके संस्कार की आवश्यकता नहीं है। रही बात मन्त्रपाठ की तो शास्त्र आदेश देता है-'तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः'। लिखा गया है।

स्त्रियों का विवाह मन्त्रसहित तथा शेष संस्कार कुल परम्परानुसार मन्त्ररहित होंगे।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी को गन्ना चूसने के लिए दिया जाय तो पहले यह देखा जाता है कि गन्ना सूनने में वह समर्थ है कि नहीं? यदि गन्ना किसी वृद्ध (दन्तविहीन) को दे दिया जाय तो देने वाले की ही हँसी होगी। ऐसा ही विचार कर लोक में भी सामर्थ्यहीन व्यक्ति के लिए गन्ने से ही बनी चीनी के रस से युक्त गुलाब जामुन खिलाते हैं तो वह उसे अच्छा लगता है। उसी प्रकार महर्षियों के द्वारा भी धनादि से सामर्थ्यहीन अत्यन्त कोमल आदि भावों को देखकर ही दयावश स्त्रियों एवं शूद्रों के लिए इतने जटिल कर्कश, अधिक धन व्ययजन्य संस्कारों को करने में छूट दी गई है। अर्थात् ये स्वयं में संस्कृत है। इनके संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। अस्तु!

अब तक हम संस्कारों की संख्या के विषय में भिन्न-भिन्न ऋषियों के अनुसार जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, साथ ही इनमें मतभेद क्यों है? इसका भी समाधान आप जान चुके हैं। संस्कार के अधिकारी कौन-कौन लोग है? एवं मन्त्रों के साथ किनका संस्कार होगा एवं बिना मंत्र के भी कुछ लोगों का संस्कार करने की आज्ञा शास्त्र देता है क्यों? इन सभी विषयों पर ऊहापोह के साथ संक्षिप्त रूप से यहाँ चर्चा की गयी है।

अब आप से कुछ प्रश्न पूछे जायेंगे जिसका उत्तर आपको देना है। ये प्रश्न है-

बोध-प्रश्न

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र किस वेद से सम्बद्ध है?
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र में कितने संस्कारों का वर्णन मिलता है?
3. बौधायन गृह्यसूत्र किस वेद से सम्बद्ध है?
4. 13 संस्कारों का वर्णन किस गृह्यसूत्र में प्राप्त होता है?

5. शुक्लयजुर्वेद का कौन सा गृह्यसूत्र है?
6. किसके मत में 16 संस्कार वर्णित है?
7. पारस्कर गृह्यसूत्र में कितने संस्कार वर्णित है?

1.6 सारांश

इस संस्कार विमर्श नामक इकाई में संस्कार के मूलस्रोत एवं संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति तथा संस्कार शब्द का प्रयोग एवं अर्थ विभिन्न शास्त्रों में किस किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उसका सोदाहरण स्वरूप परिचय आपके सामने प्रस्तुत किया गया है।

इसी क्रम में संस्कार के वैज्ञानिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए उसके तीन महत्त्वपूर्ण अर्थ आपको बताये गये, क. दोषमार्जन, ख. अतिशयाधान, ग. हीनांगपूर्ति।

इसके बाद हम आगे संस्कारों की प्रयोजन की तरफ बढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न प्रयोजनों को दर्शाते हुए मुख्य प्रयोजन पर भी कुछ चर्चा की गई।

आज के समय में जो अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन है वह चरित्र निर्माण एवं नैतिक ज्ञान का जो संस्कार से ही सुलभ है। इसके साथ ही संस्कारों के आध्यात्मिक प्रयोजन पर भी दृष्टि डाली गई। एवं बोध प्रश्न के साथ हुए पहले खण्ड का समापन एवं दूसरे उपखण्ड में संस्कारों की संख्या से सम्बद्ध बातें भिन्न-भिन्न गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों, स्मृतियों के आधार पर आपके सामने रखी गई। साथ ही संस्कार के अधिकारी आदि की भी चर्चा करते हुए अन्त में बोधप्रश्न के साथ इस उपखण्ड का समापन होता है।

1.7 शब्दावली

1. धातु = क्रिया जैसे भू, पठ्, गम् आदि
2. पुरोडाश = श्रौतयाग में दिया जाने वाला हविविशेष
3. भाजन = बरतन या पात्र
4. वपनम् = क्षौर कर्म कराना
5. संज्ञा = नाम
6. अर्थवाद = विधिवाक्यों की प्रषंसा करने वाले वाक्य
7. विट् = वैष्य
8. ब्रह्म = ब्राह्मण

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उपखण्ड - 1 के प्रश्नोत्तर

1. संस्कारों के मूलस्रोत प्रधानरूप से गृह्यसूत्र हैं।
2. संस्कार शब्द में सम् उपसर्ग है।
3. न्यायशास्त्र के विद्वानों का (नैयायिकों का)
4. कुमारसंभव में संस्कार शब्द का अर्थ शुद्धि (पवित्रता) है।
5. संस्कार में अधोलिखित तीन बातें अति महत्त्वपूर्ण की है-

   (क) दोषमार्जन

   (ख)अतिशयाधान

   (ग) हीनांगपूर्ति

उपखण्ड - 2 के प्रश्नोत्तर

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध है।
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह (11) संस्कारों का वर्णन है।
3. बौधायन गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है।
4. 13 संस्कारों का वर्णन बौधायन गृह्यसूत्र में है।
5. शुक्लयजुर्वेद का गृह्यसूत्र पारस्करगृह्यसूत्र है।
6. महर्षि व्यास के मत में 16 संस्कार है।
7. पारस्करगृह्यसूत्र में 13 संस्कार वर्णित है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थनाम	लेखक	प्रकाशन
हिन्दूसंस्कार	डॉ. राजबलीपाण्डेय	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
पारस्करगृह्यसूत्र	आचार्य पारस्कर सम्पादक डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
वीरमित्रोदय	मित्रमिश्र	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मनुस्मृति	आचार्यमनु	श्रीकृष्णदास मुम्बई
याज्ञवल्क्यस्मृति	आचार्ययाज्ञवल्क्य	श्रीकृष्णदास मुम्बई

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कारों के प्रयोजनों को विस्तार से लिखें।
2. संस्कारों की संख्या के विषय में विविध आचार्यों के मतों का उल्लेख करें।
3. संस्कारों के महत्त्व पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई 2 अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अक्षराम्भ-विद्यारम्भ संस्कार का स्वरुप

2.4 अक्षरारम्भ के मुहूर्त

2.4.1 विद्यारम्भ के मुहूर्त

2.5 बोधात्मक प्रश्न

2.6 अक्षरारम्भ-विद्यारम्भ पूजन विधि

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई बी0ए0के0ए0 223 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई 'अक्षराम्भ - विद्यारम्भ संस्कार' से सम्बन्धित है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपने संस्कार विमर्श के विषय में विशद रूप से पढ़ा | अब इसी क्रम में हम विविध संस्कारों के विषय में पड़ेंगे | उसी क्रम में प्रस्तुत इकाई में आप अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार का सर्वांग रूप से अध्ययन करेंगे | **अक्षरारम्भ** का शाब्दिक अर्थ है — *अक्षरों (letters) का आरम्भ* करना यह संस्कार तब किया जाता है जब बच्चा पहली बार लिखना या पढ़ना शुरू करता है। आमतौर पर 3–5 वर्ष की आयु में कराया जाता है। इसमें बच्चे को पहली बार अक्षर लिखना सिखाया जाता है, जैसे "ॐ", "अ", या "श्री"। कई स्थानों पर अपनी-अपनी परम्पराओं संस्कृति और सभ्यता के आधार पर तरीका अलग – अलग हो सकता है | प्राय: सनातनी परम्परा में बच्चे को चावल की थाली, स्लेट या कागज पर लिखवाया जाता है । इसे *''हाथ में कलम पकड़ाने''* की शुरुआत भी कहा जा सकता है । जिसका उद्देश्य: बच्चे को औपचारिक रूप से शिक्षा (लिखना-पढ़ना) की ओर ले जाना | विद्यारम्भ संस्कार का भी तात्पर्य व अर्थ है — *विद्या (ज्ञान) का आरम्भ* करना है | यह संस्कार शिक्षा के व्यापक प्रारम्भ को दर्शाता है । इसमें बच्चे को गुरु या शिक्षक के पास ले जाकर औपचारिक शिक्षा शुरू करवाई जाती है। यह संस्कार प्राचीन काल में गुरुकुल में प्रवेश के समय किया जाता था। इसमें पूजा, मंत्रोच्चार और आशीर्वाद शामिल होते हैं। इसका उद्देश्य:- बच्चे के बौद्धिक और नैतिक विकास के लिए शिक्षा की शुरुआत करना है ।सनातनी परम्परा में जब प्रथमत: छोटे बालक /बालिकाओं को विद्यारम्भ कराया जाता है तो पूर्व में उसे अक्षराम्भ संस्कार कराया जाता है ।शास्त्रीय मान्यता है कि अक्षरों का ज्ञान कर ही वह विद्यारम्भ की ओर अग्रसर होता है । अत: प्रस्तुत इकाई में आप अक्षराम्भ विद्यारम्भ के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे |

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- ❖ संस्कारों के महत्व को समझा सकेंगे।
- ❖ अक्षराम्भ– विद्यारम्भ की विधि का बोध हो सकेंगा।
- ❖ साथ ही अक्षराम्भ–विद्यारम्भ के मुहूर्त्त का ज्ञान हो सकेगा |
- ❖ संस्कारों के धार्मिक सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक महत्व को समझ सकेंगे |
- ❖ अक्षरारम्भ-विद्यारम्भ के प्रयोजनों की उपादेयता का बोध हो सकेगा |

2.3 अक्षराम्भ-विद्यारम्भ संस्कार का स्वरुप

प्रिय अध्येताओ जैसे कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है | **अक्षरारम्भ** और **विद्यारम्भ अर्थात शिशु को अक्षर बोध कराना ही अक्षरारम्भ है एवं अक्षरवोध के उपरान्त विभिन्न विद्याओं को जानने हेतु विद्यारम्भ** संस्कार का प्रयोजन हमारे यहाँ (भारतीय सनातन संस्कृति) एवं धर्म ग्रन्थों में बताया गया है | उक्त संस्कार प्रमुख शैक्षिक संस्कारों में शामिल हैं, जो बच्चे के जीवन में शिक्षा की औपचारिक शुरुआत का प्रतीक होते हैं। ये संस्कार यह दर्शाते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना केवल बौद्धिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक पवित्र और सांस्कृतिक कर्तव्य भी है । क्यूंकि शिक्षा और संस्कारों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है |

अक्षरारम्भ संस्कार वह अवस्था है जब बच्चे को पहली बार अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है। इस अवसर पर बच्चे को "ॐ", "अ" या "श्री" जैसे पवित्र अक्षर लिखवाकर उसकी शिक्षा यात्रा का आरम्भ किया जाता है। यह संस्कार सामान्यतः 3 से 5 वर्ष की आयु में सम्पन्न होता है और इसे शिक्षा के प्रथम चरण के रूप में देखा जाता है।

वहीं **विद्यारम्भ संस्कार** शिक्षा के व्यापक प्रारम्भ का प्रतीक है। इसमें बच्चे को गुरु या शिक्षक के मार्गदर्शन में औपचारिक शिक्षा के लिए प्रवेश दिलाया जाता है। प्राचीन समय में यह संस्कार गुरुकुल में प्रवेश के समय किया जाता था, जबकि आज के संदर्भ में इसे स्कूल शिक्षा की शुरुआत से जोड़ा जा सकता है । इन दोनों संस्कारों में प्रायः **गणेश** और **सरस्वती** की पूजा की जाती है, जिससे बुद्धि, विद्या और सफलता का आशीर्वाद प्राप्त हो। कई स्थानों पर यह संस्कार पर्व के दिनों में भी किया जाता है | जैसे - **वसंत पंचमी** या **विजयदशमी** जैसे शुभ अवसरों पर सम्पन्न किया जाता है। अत: इस प्रकार, अक्षरारम्भ और विद्यारम्भ संस्कार मिलकर बच्चे के जीवन में ज्ञान, अनुशासन और संस्कारों की मजबूत नींव रखते हैं।

2.4 अक्षरारम्भ के मुहूर्त

भारतीय ज्योतिष के अनुसार, किसी भी शुभ कार्य को करने से पहले उचित मुहूर्त पंचांग शुद्धि का चयन आवश्यक होता है। शास्त्रों के अनुसार मान्यता है कि शुभमुहूर्त - शुभ समय में प्रारम्भ किया गया कार्य सफलता, स्थिरता और सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। इसी कारण अक्षरारम्भ एवं विद्यारम्भ के लिए भी विशेष तिथियाँ, वार और नक्षत्र निर्धारण मुहूर्त शास्त्र में किया गया है | इस में अगर वार का विचार देखें तो सामान्यतः सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए उत्तम माना जाता है। ये दिन चंद्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र ग्रह से संबंधित हैं, जो क्रमशः मन, बुद्धि, ज्ञान और सौम्यता के प्रतीक हैं। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी को शुभ माना गया है। ये तिथियाँ संतुलन, वृद्धि और शुभ फल प्रदान करने वाली मानी जाती हैं। नक्षत्रों का भी इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण और रेवती नक्षत्र शिक्षा आरम्भ के लिए अत्यंत अनुकूल माने गए हैं। इन नक्षत्रों का प्रभाव बुद्धि, स्मरण शक्ति और सीखने की क्षमता को बढ़ाने वाला माना जाता है। इस सन्दर्भ में आचार्य रामदैवज्ञ जी लिखते है कि – **गणेश – विष्णु वाग्रमा: प्रपूज्य पंचमाब्दके । तिथौ शिवार्कदिग्द्विषटशरत्रिके रवावुदक् लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे । चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रह: सतां दिने ।।** अर्थात् गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा नक्षत्रों में चर लग्नों (१,४,७,१०) को छोड़कर , शुभग्रहों के लग्नों में २,३,४,६,७,९,१२ में शुभ ग्रहों के सोमवार, बुधवार गुरूवार और शुक्रवारों में बालकों को अक्षराम्भ कराना चाहिये।

- **अक्षरारम्भ (अक्षर लिखना शुरू करना) और विद्यारम्भ (शिक्षा आरंभ करना)** के लिए शुभ मुहूर्त का विशेष महत्व माना जाता है। यह परंपरा खासकर छोटे बच्चों की शिक्षा की शुरुआत के लिए की जाती है।
- **सामान्यतः शुभ दिन (वार और तिथि)** अक्षरारम्भ/विद्यारम्भ के लिए ये दिन अच्छे माने जाते हैं:
- **वार:** सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार |

- **शुभ पक्ष एवं तिथियाँ: शुभ पक्ष** - अक्षराम्भ शुक्ल पक्ष में शुभ माना जाना है। कृष्ण पक्ष में यदि करना हो तो प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक यह श्रेयस्कर माना जाता है।
- **शुभ तिथियॉ** - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी,एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,7,10,11,12) तिथियों को अक्षराम्भ में प्रशस्त माना गया है।
- **इसके अतिरिक्त - बसंत पंचमी** – विद्या की देवी सरस्वती की पूजा का दिन (वसन्त पञ्चमी) शिक्षा आरंभ के लिए सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।
- **विजयदशमी** – इसे भी विद्यारम्भ के लिए अत्यंत शुभ माना जाता है।
- **अक्षय तृतीया** – हर कार्य के लिए सिद्ध मुहूर्त।

- **निषिद्ध काल** - अमावस्या, पूर्णिमा (कुछ परंपराओं में) ग्रहण काल | राहुकाल
- भद्रा काल

- **नक्षत्र:-** अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण एवं रेती इन 10 नक्षत्रों में अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है

प्रशस्त वर्ष– जन्म से अथवा गर्भाधान से पॉचवॉ वर्ष अक्षराम्भ के लिए प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त मास - उत्तरायण सूर्य में, अर्थात् चैत्र को छोड़कर माघ आदि छ: (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़) इन पॉच मासों के अन्दर अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

चूड़ाकरण संस्कार की भॉति सौरमास के अनुसार ही मास गणनाकरनी चाहिये , न कि चान्द्र मास के अनुसार। आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त हरिशयन होने के कारण चूड़ाकरण की भॉति अक्षराम्म्भ - विद्यारम्भ का भी मुहूर्त्त निकालना चाहिए ।

प्रशस्त लग्न एवं नवांश- वृष मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन 2,3,6,9,12 इन पॉच लग्नों में या इनके नवमांश में अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

त्याज्य समय - हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू – शुक्र के अस्त, बाल,वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यंसस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग इन समयों में अक्षराम्भ नहीं करना चाहिये।

अक्षराम्भ संस्कार को अच्छी तरह से समझने के लिए आप निम्न सारिणी का भी प्रयोग कर सकते हैं –

उपर्युक्त सारिणी के आधार पर आप अक्षराम्भ संस्कार कर्म कर सकते हैं। स्मरण करने हेतु भी यह चार्ट आपके लिए सुविधाजनक होगा।

2.4.1 विद्यारम्भ के मुहूर्त -

विद्यारम्भ संस्कार के लिए शुभ मुहूर्त का निर्धारण तिथि, वार, नक्षत्र एवं लग्न के आधार पर किया जाता है। सामान्यतः शुभ नक्षत्रों और शुभ तिथियों में बालक का अक्षरारम्भ अथवा शिक्षा प्रारम्भ कराया जाता है। अक्षराम्भ की भान्ति विद्यारम्भ मुहूर्त भी इस प्रकार से ज्ञात करना चाहिए |

मृगशिरा, हस्त और श्रवण से तीन – तीन नक्षत्र अर्थात् मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य से दो अर्थात् पुष्य, आश्लेषा, नक्षत्रों में, रवि, गुरू, बुध और शुक्र वासरों में षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी,दशमी एवं द्वितीया तिथियों में, शुभग्रहों के केन्द्र और त्रिकोण (१,४,५,७,९,१०) भावों में स्थित रहने पर, अन्य मतानुसार ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी), रेवती और अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्याध्ययन का आरम्भ शुभ होता है ।

विद्यारम्भ हेतु शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त्त में श्रीगणेश, विष्णु,सरस्वती, तथा लक्ष्मी की पूजा करने के पश्चात् बालक का विद्यारम्भ निम्नलिखित मास, तिथि,वार, दिन एवं नक्षत्र में करना चाहिये ।

शुभ मास - सूर्य जब उत्तरायण में हो अर्थात चैत्र को छोड़कर माघ आदि छः (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़) इन पॉच मासों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है ।

शुभ पक्ष- शुक्लपक्ष एवं कृष्ण पक्ष के प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक केवल ।

शुभ तिथियॉ - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,10,11,12) तिथियों को विद्यारम्भ में प्रशस्त माना गया है ।

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वाभाद्रपद इन 16 नक्षत्रों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है ।

शुभ वार - रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र वारों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है ।

शुभ लग्न एवं नवमांश - वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन 2,3,6,9,12 इन पॉच लग्नों में या इनके नवमांश में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है ।

2.5 बोधात्मक प्रश्न

1. अक्षरारम्भ संस्कार से क्या अभिप्राय है?
2. विद्यारम्भ संस्कार का मुख्य उद्देश्य क्या है?
3. अक्षरारम्भ संस्कार सामान्यतः किस आयु में किया जाता है?
4. अक्षरारम्भ और विद्यारम्भ संस्कार में क्या अंतर है?
5. अक्षरारम्भ संस्कार में बच्चे को कौन-से अक्षर लिखवाए जाते हैं?
6. विद्यारम्भ संस्कार में गुरु की क्या भूमिका होती है?
7. इन संस्कारों में **सरस्वती** पूजा का क्या महत्व है?

2.6 अक्षरारम्भ-विद्यारम्भ पूजन विधि

सर्व प्रथम शिशु व शिशु के माता – पिता नित्यकर्म (स्नान आदि प्रात: कालीन) से निवृत होकर, व्यवस्था- विद्यारम्भ संस्कार के लिए सामान्य तैयारी के अतिरिक्त नीचे लिखी व्यवस्थाएँ पहले से ही बना लेनी चाहिए। १पूजन के लिए गणेशजी एवं माँ सरस्वती के . चित्र या प्रतिमाएँ। २पट्टी ., दवात और लेखनी, पूजन के लिए। बच्चे को लिखने में सुविधा हो, इसके लिए स्लेट, खड़िया भी रखी जा सकती है। ३गुरु पूजन के लिए प्रतीक रूप में . नारियल रखा जा सकता है। बालक के शिक्षक प्रत्यक्ष में हों, तो उनका पूजन भी कराया जा सकता है। विशेष कर्मकाण्डमङ्गलाचरण से लेकर रक्षाविधान तक के - क्रम पूरे करके विशेष कर्मकाण्ड कराया जाता है । गणेश पूजन॥ क्रिया और भावना- बालक के हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली देकर मन्त्र के साथ गणपति जी के चित्र के सामने अर्पित कराएँ। भावना करें कि इस आवाहनपूजन के द्वारा विवेक के - अधिष्ठाता से बालक की भावना का स्पर्श हो रहा है। उनके अनुग्रह से बालक मेधावी और विवेकशील बनेगा। बच्चे के हाथ में अक्षत-पुष्प देकर सूत्र दुहरवायें -
ॐ विद्यां संवर्धयिष्यामि। (बच्चे में शिक्षा के साथसाथ विद्या का भी विकास -
(करेंगे। तदुपरान्त मन्त्रोच्चारण के साथ पूजा वेदी पर उसे चढ़वा दें ।
ॐ गणानां त्वा गणपतिहवामहे * प्रियाणां त्वा प्रियपतिहवामहे * निधीनां त्वा निधिपति * हवामहे वसोमम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ ॐ गणपतये नमः। आवाहयामि स्थापयामि, ध्यायामि॥

सरस्वती पूजन॥ क्रिया और भावना बालक के -हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली आदि देकर मन्त्रोपरान्त माँ सरस्वती के चित्र के आगे पूजा भाव से समर्पित कराएँ। भावना करें कि यह

बालक कला, ज्ञान, संवेदना की देवी माता सरस्वती के स्नेह का पात्र बन रहा है। उनकी छत्रछाया का रसास्वादन करके यह ज्ञानार्जन में सतत रस लेता हुआ आगे बढ़ सकेगा। पुनः-अक्षत देकर सूत्र दुहरवायें - ॐ कलां संवेदनशीलतां वर्धयिष्यामि। (बच्चे में कलात्मकता और संवेदनशीलता का विकास करेंगे।(तदुपरान्त मन्त्र बोलते हुए उसे पूजा - वेदी पर चढ़वा दें। ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि स्थापयामि, ध्यायामि। २०.८४-

॥ उपकरणोंमाध्यमों की पवित्रता॥ - शिक्षा की तीन अधिष्ठात्री देवियाँउपासना विज्ञान की - मान्यताओं के आधार पर कलम की अधिष्ठात्री देवी'धृति' दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' और पट्टी की अधिष्ठात्री देवी 'तुष्टि' मानी गई है। षोडश मातृकाओं में धृति, पुष्टि तथा तुष्टि तीन देवियाँ उन तीन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विद्या प्राप्ति के लिए आधारभूत हैं। विद्यारम्भ संस्कार में कलमपूजन का मन्त्र बोलते समय धृति का आवाहन - करते हैं। निर्धारित मन्त्रों मेन उन्हीं की वन्दना, अभ्यर्थना की गयी है। बच्चे एवं अभिभावकों के हाथ में अक्षत-पुष्प देकर सूत्र दुहरवायें - ॐ विद्यासंसाधनमहत्त्वं स्वीकरिष्ये। (विद्या विकास के साधनों की गरिमा का अनुभव करते रहेंगे।(इसके बाद स्लेट, बत्ती, कलम कॉपी पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक -चढ़वा दें।

॥ लेखनी पूजन॥ क्रिया और भावनापूजन सामग्री बालक के हाथ में दी जाए। पूजा की - चौकी पर स्थापित कलम पर उसे मन्त्र के साथ श्रद्धापूर्वक चढ़ाया जाए। भावना की जाए कि धृति शक्ति बालक की विद्या के प्रति अभिरुचि को परिष्कृत कर रही है। ॐ पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्जधीरः। एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीम् अष्टापदीं भुवनानु प्रथन्तास्वाहा॥- ८.३० *

॥ दवात पूजन॥ क्रिया और भावना- पूजा वेदी पर स्थापित दवात पर बालक के हाथ से मन्त्रोच्चार के साथ पूजन सामग्री अर्पित कराई जाए। भावना की जाए कि पुष्टि शक्ति के सान्निध्य से बालक में बुद्धि की तीव्रता एवं एकाग्रता की उपलब्धि हो रही है। ॐ देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रिय शूषमिन्द्रे * वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥२८.४१ -

॥ पट्टी पूजन॥ क्रिया और भावना- बालक द्वारा मन्त्रोच्चार के साथ पूजा स्थल पर स्थापित पट्टी पर पूजन सामग्री अर्पित कराई जाए। भावना की जाए कि इस आराधना से बालक तुष्टि

शक्ति से सम्पर्क स्थापित कर रहा है। उस शक्ति से परिश्रम, साधना करने की क्षमता का विकास होगा।

ॐ सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति। अपारसेन वरुणो न साम्नेन्द्र * * श्रियै जनयन्नप्सु राजा॥- १९.९४

॥ गुरु पूजन॥ क्रिया और भावनामन्त्र के साथ बालक द्वारा गुरु के अभाव में उनके प्रतीक - का पूजन कराया जाए। भावना की जाए कि इस श्रद्धा प्रक्रिया द्वारा बालक में वे शिष्योचित गुण विकसित हो रहे हैं, जिनके आधार पर शिष्य भी धन्य हो जाता है और गुरु भी। गुरु तत्त्व की कृपा का भाजन बालक बना रहे। हाथ में अक्षतपुष्प देकर बच्चे एवं - -अभिभावकों से सूत्र दुहरवायेंॐ आचार्यनिष्ठां वर्धयिष्यामि। (शिक्षकोंगुरुजनों के प्रति - निष्ठा को सतत बढ़ाते रहेंगे ।

मंत्र के साथ गुरु पूजन करें। ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।

उपयामगृहीतोसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा॥ ॐ श्री गुरवे नमः। आवाहयामि स्थापयामि, ध्यायामि। -२६३., तैत्ति०सं० १८.२२.१२।.

॥ अक्षर लेखन एवं पूजन॥ क्रिया और भावना- पट्टी पर बालक के हाथ से 'ॐ भूर्भुवः स्वः' शब्द लिखाया जाए। खड़िया से उन अक्षरों को अध्यापक बना दें और बालक उस पर कलम फेरकर अक्षर बना दे अथवा अध्यापक और छात्र दोनों कलम पकड़ लें और उपर्युक्त पञ्चाक्षरी गायत्री मन्त्र को पट्टी पर लिख दें। ज्ञान का उदय अन्तःकरण में होता है। ज्ञान की प्रथम अभिव्यक्ति अक्षरों को पूजकर की जाती है। भविष्य में बच्चे में साधना के प्रति उमङ्ग पैदा की जाए।अक्षत, पुष्प लेकर अक्षर पूजन करें। सूत्र दुहरायें- ॐ नीतिनिष्ठां वर्धयिष्यामि। (बच्चे में नीति के प्रति निष्ठा की वृद्धि करते रहेंगे।(मन्त्र- ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। -- १६.४१ इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुति तक का क्रम चले। बालक को भी उसमें सम्मिलित रखें।

॥ विशेष आहुति॥ हवन सामग्री में कुछ मिष्टान्न मिलाकर पाँच आहुतियाँ निम्न मन्त्र से कराएँ। भावना करें, यज्ञीय ऊर्जा बालक के अन्दर संस्कार द्वारा पड़े प्रभाव को स्थिर और बलिष्ठ बना रही है। ॐ सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम स्वाहा॥ इदं सरस्वत्यै इदं न मम। १९.८३-

तत्पश्चात् यज्ञ के शेष क्रम स्विष्टकृत -पृष्ठ १००)१२१से आगे पूरा करके आशीर्वचन (, विसर्जन एवं जयघोष के बाद कार्यक्रम का समापन करें।

2.7 सारांश

भारतीय सनातन संस्कृति में मानव जीवन को श्रेष्ठ एवं संस्कारित बनाने के लिए सोलह संस्कारों का विधान किया गया है। इन्हीं संस्कारों में **अक्षरारम्भ** तथा **विद्यारम्भ** संस्कार का विशेष महत्व है। ये दोनों संस्कार बालक के शैक्षिक जीवन की शुरुआत का प्रतीक माने जाते हैं। शिक्षा को भारतीय परंपरा में केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण, संस्कार, नैतिकता और आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है। इसलिए शिक्षा का प्रारम्भ शुभ समय और धार्मिक विधि से कराया जाता है । जैसे कि आपने इस इकाई के अन्तर्गत जाना कि अक्षरारम्भ और विद्यारम्भ क्या है आदि | **अक्षरारम्भ का अर्थ** "अक्षरारम्भ" दो शब्दों से मिलकर बना है— *अक्षर* अर्थात् वर्ण या शब्द और *आरम्भ* अर्थात् शुरुआत । इसका अर्थ है बच्चे को पहली बार अक्षर ज्ञान कराना। इस संस्कार में बालक को पहली बार लिखना और पढ़ना सिखाया जाता है। सामान्यतः बालक को "ॐ", "श्री", "गणेशाय नमः" या हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर लिखवाया जाता है। **विद्यारम्भ का अर्थ-** विद्यारम्भ का अर्थ है शिक्षा का विधिवत प्रारम्भ। यह संस्कार बच्चे के विद्यालय जाने या नियमित अध्ययन शुरू करने से पहले किया जाता है। इसमें गुरु, माता-पिता या पुरोहित बालक को शिक्षा ग्रहण करने का आशीर्वाद देते हैं। इसका उद्देश्य बालक में ज्ञान के प्रति रुचि, अनुशासन और सद्गुणों का विकास करना होता है। साथ ही इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि इस संस्कार के पूजन विधान में गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा नक्षत्रों में चर लग्नों (१,४,७,१०) को छोड़कर , शुभग्रहों के लग्नों में २,३,४,६,७,९,१२ में शुभ ग्रहों के सोमवार, बुधवार गुरूवार और शुक्रवारों में बालकों को अक्षराम्भ कराना चाहिये। इस प्रकार शास्त्रोक्त मुहूर्त्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी जी की पूजा करके बालक का अक्षराम्भ कराना चाहिये।

2.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1.पहलीबार अक्षर ज्ञान

2. औपचारिक शिक्षा की शुरुआत

3. अक्षरारम्भ संस्कार 3-5 वर्ष

4. पहली बार अक्षर लिखना पढ़ना सिखाया जाता है |

5. इस संस्कार में बच्चे को पवित्र अक्षर अ , ॐ आदि अक्षरों का बोध किया जाता है |

6. गुरु शिक्षा का ज्ञान देता है |

7. इन संस्कारों में सरस्वती पूजा का महत्व विशेष |

2.9सन्दर्भग्रन्थ सूची

याज्ञवल्क्य स्मृति –गंगासगर राय

कर्मकाण्ड प्रदीप

कर्मठ गुरु

मुहूर्त्तचिन्तामणि– रामदैवज्ञ

धर्म और संस्कार

संस्कार विमर्श

2.10 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

1. अक्षराम्भ संस्कार क्या विधिसहित लिखिए |
2. विद्यारम्भ मुहूर्त्त का लेखन व महत्व का वर्णन कीजिये।
3. संस्कारों की क्या प्रासंगिकता है वर्तमान परिप्रेक्ष्य में |

इकाई 3उपनयन संस्कार

इकाई की संरचना

3.1प्रस्तावना

3.2उद्देश्य

3.3 उपनयन विधान

बोध प्रश्न

3.4सारांश

3.5पारिभाषिक शब्दावली

3.6बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0के0ए0-201 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई 'उपनयन विधान' से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कारान्तर्गत अक्षराम्भ एवं उपनयन संस्कार का अध्ययन कर लिया है। उपनयन संस्कार में अब तक उसकी आवश्यकता एवं महत्व को जाना हैं। यहॅा इस इकाई में आप उपनयन के विधानों को पढ़ेगे। कर्मकाण्ड में उपनयन संस्कार का विधान बतलाया गया है । विधान से तात्पर्य उपनयन संस्कार करने के दौरान क्या – क्या होता है? उसकी विधि क्या है ? आदि ..... आदि। प्रस्तुत इकाई में आपके ज्ञानार्थ उपनयन संस्कार के विधानों का उल्लेख किया जा रहा हैं, जिसे पढ़कर आप तत्सम्बिन्धत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- उपनयन संस्कार के विधि को बता सकेंगे।
- विधान के अन्तर्गत कथित तथ्यों को समझा सकेंगे।
- उपनयन का महत्व निरूपण कर सकेंगे।
- उपनयन विधान के मन्त्रों का ज्ञान कर लेंगे।
- उपनयन के लाभ - हानि की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 उपनयन विधान

उपनयन' वैदिक परंपराका एक महत्वपूर्ण संस्कार है। यह एक प्रकार का शुद्धिकरण हैजिसे करने से वैदिक वर्णव्यवस्था में व्यक्ति द्विजत्व को प्राप्त होता था जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते,अर्थात् वह वेदाध्ययन काअधिकारी हो जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ होता है - नैकट्य प्रदान करना, क्योंकि इसके द्वारा वेदाध्ययन का इच्छुक व्यक्ति वेदशास्त्रों में पारंगत -गुरु/ आचार्य की शरण में जाकर एक विशेष अनुष्ठान के माध्यम से वेदाध्ययन कीदीक्षा प्राप्त करता था, अर्थात् वेदाध्ययन के इच्छुक विद्यार्थी को गुरुअपने संरक्षण में लेकर एक विशिष्ट अनुष्ठान के द्वारा उसके शारीरिक एवंजन्म जन्मांतर दोषों/ कुसंस्कारों -का परिमार्जन कर उसमें वेदाध्ययन के लिएआवश्यक गुणों का आधार करता था, उसे एतदर्थ आवश्यक नियमों (व्रतों) कीशिक्षा प्रदान करता था, इसलिए इस संस्कार को व्रतबन्ध''' भी कहा जाता था।फलतः अपने विद्यार्जन काल में उसे एक नियमबद्ध रुप में त्याग, तपस्या औरकठिन अध्यवसाय का जीवन बिताना पड़ता था तथा

श्रुतिपरंपरा से वैदिक विद्यामें निष्णात होने पर समावर्तन संस्कार के उपरांत अपने भावी जीवन के लिएदिशानिर्देश (दीक्षा) लेकर ही अपने घर आता था। उत्तरवर्ती कालों में -यद्यपि वैदिक शिक्षा - पद्धति की परंपरा के विच्छिन्न हो जाने सेयह एकपरंपरा का अनुपालन मात्र रह गया है, किंतु पुरातन काल में इसका एक विशेषमहत्व था।

यज्ञोपवीत अथवा उपनयन बौद्धिक विकास के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कारहै। धार्मिक और आधात्मिक उन्नति का इस संस्कार में पूर्णरूपेण समावेश है।हमारे मनीषियों ने इस संस्कार के माध्यम से वेदमाता गायत्री को आत्मसातकरने का प्रावधान दिया है। आधुनिक युग में भी गायत्री मंत्र पर विशेष शोधहो चुका है। गायत्री सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्र है।यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं अर्थात् यज्ञोपवीत जिसे जनेऊ भी कहा जाता हैअत्यन्त पवित्र है। प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से इसका निर्माण किया है। यहआयु को बढ़ानेवाला, बल और तेज प्रदान करनेवाला है। इस संस्कार के बारे मेंहमारे धर्मशास्त्रों में विशेष उल्लेख है। यज्ञोपवीत धारण का वैज्ञानिकमहत्व भी है। प्राचीन काल में जब गुरुकुल की परम्परा थी उस समय प्राय: आठवर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाता था। इसके बाद बालकविशेष अध्ययन के लिये गुरुकुल जाता था। यज्ञोपवीत से ही बालक को ब्रह्मचर्यकी दीक्षा दी जाती थी जिसका पालन गृहस्थाश्रम में आने से पूर्व तक कियाजाता था। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन केसाथ आत्मिक विकास में रतरहने के लिये बालक को प्रेरित करना है।

यज्ञोपवीत का प्रयोजन –

आचार्य गृह में जाने पर, बालक को अपना शिष्य बनाते समय आचार्य यज्ञोपवीत धारण कराता है। यह जहॉ, आचार्य के शिष्य वर्ग में प्रवेश का एक चिन्ह हैं वहॉ यह अन्य भी कई महत्वपूर्ण कर्तव्यों का प्रतीक है।

यज्ञोपवीत संस्कार अथवा मौञ्जी – बन्धन को बालक का दूसरा जन्म बताया गया है। यह उसके ब्रह्मचर्यव्रत एवं विद्याध्ययन का प्रतीक है।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है –

जायमानो वै ब्राह्मण: त्रिभि: ऋणै: ऋणव जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य:, यज्ञेन देवेभ्य:, प्रजया पितृभ्य:। एष वै अनृणो य: पुत्री यज्वा, ब्रह्मचारिवासी।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य पर तीन ऋणों का भार होता है वह ब्रह्मचर्य का पालन कर ऋषि ऋण को उतारता है, गृहस्थ धर्म के पालन पूर्वक सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण और यजन द्वारा देवऋण से उर्ऋण होता है।

इन तीन ऋणों की स्मृति यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से होती रहती है ।

अथवा एक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़े गये यज्ञोपवीत के तीन तार ज्ञान, कर्म और उपासना-इन त्रिविध कर्तव्यों के साथ – साथ पालन के प्रतीक हैं। एक सूत्र के टूट जाने पर ही यज्ञसूत्र खण्डित माना जाता है। इसी प्रकार ज्ञान – कर्म उपासना में से एक को भी भूल जाना व्रत को खण्डित कर देना है प्राचीन समय में विद्यार्थी इस विद्या – चिन्ह को अपने वस्रों के उपर ही धारण करते थे। महाभारत में एक स्थल पर वर्णन हैं –

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।

शुक्लकेशः सितश्मश्रु शुक्लमाल्यानुलेपनः ।।

अर्थात् वृद्ध द्रोणाचार्य श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे।

विधि-

उपवास तथा व्रत –

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार –

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।

शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार कराना हो उससे तीन अथवा एक दिन पहले तीन अथवा एक व्रत बालक को करावे। इस समय ब्राह्मण बालक को दुग्ध पर, क्षत्रिय बालक को यवार्गू (जौ का दलिया) पर और वैश्य बालक को श्रीखण्ड पर रखे।

गायत्री जप

आचार्य के समीप उपनयन के नियत शुभदिन से एक दिन पूर्व यजमान पत्नी और उपनेय बालक सहित मंगल स्नान कर, शुद्ध वस्र धारण कर अग्निहोत्रशाला से भिन्न मण्डप में पूर्वाभिमुख शुभासन पर बैठ, दक्षिण में पत्नी और उसके दक्षिण में बालक को बैठा उपनयन कराने के अपने अधिकार की सिद्धि के लिए तथा बालक के अब तक के यथेष्ठाचारण के दोष निवृत्ति के लिए इस प्रकार संकल्प करें –

यजमान - कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नाय गोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्य दानपूर्वकं द्वादश सहस्रं द्वादशाधिकसहसंवागायत्रीजपमहं ब्राह्मणद्वारा कारयिष्ये ।

कुमारः - मम कामचारकामवादकामभक्षणादिदोषपरिहारार्थं

कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानपूर्वकं द्वादशसहस्रं

द्वादशाधिकसहस्रं वा ब्राह्मणद्वारा गायत्री जपं कारयिष्ये ।

संकल्प करके गोदान करावें और १२००० अथवा १०१२ गायत्री का जप करावें।

गणपति पूजनादि

पश्चात् बालक के उपनयन संस्कार का संकल्प कर, संकल्प पूर्वक गणपतिपूजन, स्वस्ति, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन एवं आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए।

मुंडनादि –

संस्कार के दिन संकल्प पूर्वक कुमार का संस्कारांगभूत मुंडन कराकर क्रम से ३ ब्राह्मणों और कुमार को भोजन कराकर बाहर शाला में पंचभू संस्कार एवं अग्नि की स्थापना कर आचार्य के समीप ले आवे । इस समय बालक शुद्ध वस्त्रादि पहने हो ।

आचार्य द्वारा वस्त्रादि धारण कराना -

संस्कार्य कुमार को आचार्य के दाहिने ओर, अग्नि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठाकर विप्रजन आर्शीवाद दें । तब आचार्य बालक से ये वाक्य कहलावें –

बालक– ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्माचार्यसानि।

अब आचार्य निम्नलिखित मंत्र पढ़कर ब्रह्मचारी को कटिसूत्र तथा कौपीन आदि वस्त्र देवे और आचमन करावे -

ऊँ येनेन्द्राय वृहस्पतिर्वास: पर्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।

मेखला धारण–

आचार्य निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर अथवा मौन ही ब्रह्मचारी के जितने प्रवर हों उतनी गांठवाली मूंज आदि की मेखला ब्रह्मचारी के कटिभाग में प्रदक्षिणा क्रम से तीन बार लपेट बांधे –

ऊँ इयं दुरूक्तं परिवधामाना वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम् ।

अथवा –

ऊँ युवा सुवासा: परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमान: । तं धीरास: कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त: ।

ब्राह्मणों को संकल्प कर यज्ञोपवीत और बर्तन दें।

यज्ञोपवीत संस्कार –

निम्न तीन मन्त्रों को पढ़कर आचार्य यज्ञोपवीत का संस्कार करें –

ऊँ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न उर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ।

ऊँ यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न: । उशतीरिव मातर: ।

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ।।

यज्ञोपवीत में अंगूठा फिराना –

नीचे लिखे तीन मन्त्र पढ़ता हुआ आचार्य यज्ञोपवीत में अंगूठा फिरावे : -

ऊँ ब्रह्म यज्ञानां प्रथमम्पुरस्ताद् विसीमतः सुरूचोवेन आवः । स बुघ्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ।

ऊँ इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा गॅू सुरेश्वाः ।।

ऊँ नमस्ते रूद्र मन्यव उतोत इषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः ।।

तन्तुओं में देवताविन्यास –

अब आचार्य यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं में ओंकारादि नौ देवों का विन्यास करें-

ओंकारं प्रथमे तन्तौ विन्यस्यामि।

अग्नि द्वितीये तन्तौ विन्यस्यामि।

नागांस्तृतीये तन्तौ विन्यस्यामि।

सोमं चतुर्थे तन्तौ विन्यस्यामि।

इन्द्रं पंचमे तन्तौ विन्यस्यामि।

प्रजापतिं षष्ठे तन्तौ विन्यस्यामि।

वायुं सप्तमे तन्तौ विन्यस्यामि।

सूर्यं अष्टमे तन्तौ विन्यस्यामि।

विश्वेदेवान् नवमे तन्तौ विन्यस्यामि।

इसके पश्चात् यज्ञोपवीत को देखता हुआ दस बार गायत्री मन्त्र का पाठ करे और नीचे लिखे मन्त्र का पाठ करता हुआ उसे सूर्य को दिखावे –

ऊँ उपयाम गृहीतोऽसि सावित्रोऽसि च नोधाश्च नोधा असि च नो मयि धेहि। जिन्व यज्ञ जिन्व यज्ञ पतिं भगाय देवाय तवा सवित्रे ।।

यज्ञोपवीत धारण –

आचार्य ब्रह्मचारी कुमार के हाथ में यह मन्त्राभिपूत यज्ञा सूत्र दे और ब्रह्मचारी निम्नलिखित मन्त्र पढ़ता हुआ उसे दाहिने बाहु को उठाकर बांये कंधे से पहने।

ऊँ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।

दण्ड धारण –

आचार्य मौन ही बालक को दण्ड धारण कराये-

ब्रह्मचारी निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ दण्ड को ग्रहण करे –

ॐ यो मे दण्ड: परापतदवैहायसोऽधिभूम्याम् । तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ।।

सूर्यावलोकन–

आचार्य निम्न मन्त्र से अपनी अंजलि के जल से तीन बार ब्रह्मचारी की अंजलि को भरे –

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न उर्जेदधातनमहेरणाय चक्षसे ।

ॐ यो व: शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह न: । उशतीरिवमातर: ।।

ॐ तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च न ।।

जल से बालक की अंजुलि भर कर आचार्य बालक को सूर्यदर्शन के लिए कहे । बालक तच्चक्षु इत्यादि मन्त्र पढ़ता हुआ सूर्यदर्शन करे । पुन: उसी क्रम में सूर्योपस्थान करना चाहिये ।

अग्नि पर्युक्षण-

कुमार प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि का पर्युक्षण कर आचार्य के बायीं ओर बैठ जावे और फूल चन्दन – ताम्बूल और कपड़े आदि लेकर ब्रह्मा का वरण आदि कुशकण्डिकादि होम की सम्पूर्ण विधि को बर्हिहोम तक सम्पूर्ण करे ।

आचार्य की शिक्षा –

पश्चात् आचार्य कुमार को निम्नलिखित उपदेश दे –

आचार्य - ब्रह्मचार्यसि ।

ब्रह्मचारी - भवानि ।

आचार्य- अपोऽशान ।

ब्रह्मचारी - अशानि ।

आचार्य - कर्म कुरू ।

ब्रह्मचारी – करवाणि ।

आचार्य - मा दिवा स्वाप्सी: ।

ब्रह्मचारी – न स्वप्नानि ।

आचार्य - वाचं यच्छ ।

ब्रह्मचारी – यच्छानि ।

आचार्य अध्ययनं सम्पादय ।

ब्रह्मचारी – सम्पादयानि ।

आचार्य - समिधमाधेहि।

ब्रह्मचारी - आदधानि।

आचार्य - अपोऽशान।

ब्रह्मचारी - अशानि।

पश्चात् संकल्पादि कर्म विधि से आचार्य पूजन करना चाहिये।

गायत्री पूजन कर गायत्री उपदेश सुनना चाहिये।

पुन:आचार्य उपदेश के रूप में ब्रह्मचारी को गायत्री प्रदान करता है।

गायत्री की आवृत्ति का प्रकार इस प्रकार है –

ॐ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यम्।

ॐ भूर्भुव: स्व:। भर्गोदेवस्य धीमहि।

ॐ भूर्भुव: स्व: । धियो यो न: प्रचोदयात्॥ इयमेकावृत्ति:।

ॐ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। ॐ भूर्भुव: स्व: धियो यो न: प्रचोदयात्। इति द्वितीयाऽऽवृत्ति:।

ॐ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।

इस प्रकार गायत्री मन्त्र का पाठ साथ – साथ शिष्य भी करे। अन्त में दोनों मिलकर ओं स्वस्ति उच्चारण करें।

अथ समिदाधानम् -

इस कर्म में ब्रह्मचारी आचार्य के दाहिनी ओर अग्नि से पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठकर घृताक्त अरण्णों के कण्डों की 5 आहुतियॉ निम्नलिखित 5 मन्त्रों से दे : -

ॐ अग्ने सुश्रव: सुश्रवसं मा कुरू स्वाहा।

ॐ यथात्वमग्ने सुश्रव: सुश्रवा असि स्वाहा।

ॐ एवं मा गॅू सुश्रव: सौश्रवसं कुरू स्वाहा।

ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।

ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्रू निधिपो भूयासम्।

इस प्रकार अग्नि प्रज्वलित कर दायें हाथ से किसी छोटे पात्र में जल लेकर दायी – दायीं ओर इस क्रम से अग्नि के चारो ओर जल सेचन करें।

फिर खड़ा रहकर अपनी विलस्त भर ढाक की तीन घी में भिगोई हुईए समिधाओं का एक एक करके हवन करे। इस समय निम्न मन्त्र को पढे –

ॐ अग्नये समिधमाहार्षं वृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिध समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसा न्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्रून्नदो भूयासम्।

ॐ एषाते अग्ने समित्त्या वर्धस्व चाप्यायस्व वर्धिषीमहि च वयमाप्यासिषीमहि स्वाहा।

पुन: बैठकर पूर्वोक्त अग्ने सुश्रव: इत्यादि पॉच मन्त्र से अग्नि में सूखे कण्डे डाले और अग्नि के चारों और जलसिंचन करे । फिर मुख तथा सभी अंगो को स्पर्श करे।

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी वैश्वानर और सूर्य का अभिवादन कर आचार्य माता – पिता आदि गुरूजनों को यथायोग्य नमस्कार करें।

भिक्षाविधि -

ब्रह्मचारी भिक्षा पात्र हाथ में लेकर ब्राह्मण कुमार हो तो भवति भिक्षां देहि। क्षत्रिय हो तो भिक्षां भवति देहि। वैश्य कुमार हो तो भिक्षां देहि भवति कहता हुआ भिक्षा मांगे । प्रथम उन स्त्रियों से भिक्षा मांगे जो निषेध न करें। पहले माता से ही भिक्षा मांगे। माता न हो तो सगी बहन अथवा मौसी से भिक्षा मांगे । तीन छ: बारह अथवा 12 से अधिक स्त्रियों से भिक्षा मांग कर लावे। जिस – जिस से भिक्षा मांगे मिलने पर ॐ स्वस्ति आशीर्वचन कहकर भिक्षा ग्रहण करे। पश्चात् इस भिक्षा को आचार्य को समर्पित करे और उसकी आज्ञा से भक्षण करे । भिक्षा में पका हुआ अन्न ही समझना चाहिये।

भोजन कर लेने के पश्चात् सायंकाल सूर्यास्त तक मौन रहे। यदि सामर्थ्य हो तो बैठे लेटे नहीं। तदनन्तर सायंकालीन सन्धया कर अग्ने: सुश्रवा: से अग्निप्रज्वलनं से लेकर गुरूओं के अभिवादन तक की क्रिया करके मौनव्रत को समाप्त कर दे।

उपदेश विधि -

इसके पश्चात् आचार्य उपनयन से लेकर समावर्तन संस्कार पर्यन्त करने योग्य कर्तव्यों का उपदेश करे। ये उपदेश संक्षेप में निम्नलिखित है –

भूमौ शयनम् । अक्षारलवणाशनम् । दण्डधारणमग्निपरिचरणम् । गुरूशुश्रूषा भिक्षाचार्या । मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमननृतादत्तादानानि वर्जयेत् । अष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् । द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्। यावद् ग्रहणं वा। आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिश्रृणुयात्। शयानं चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठन्तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्नभिक्रामंतं चेदभिधावन् । स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्य वसत्यमुत्राद्य वसतीति तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति।

अर्थात् ब्रह्मचारी पृथ्वी आदि कठोर शय्या पर सोये । क्षार या लवण न खाये। दण्डधारण हवन गुरूसेवा भिक्षाचरण आदि उसके नित्य के कार्य है। मधुमांसभोजन गहरे जल में स्नान स्त्री सेवन असत्य व्यवहार अदत्त का ग्रहण्सा आदि कार्य कभी न करे । 48 वर्ष अर्थात् प्रत्येक वेद के लिए 12 - 12 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे अथवा जितना रख सके । आचार्य बुलावे तो उठकर उत्तर दे। सो रहे हों तो बैठकर बैठें हो तो समीप ठकर कर ठहरे हों तो पास पहुॅचकर चल पड़े तो हो तो दौडकर पास पहुॅचकर उत्तर दे। जो इस प्रकार ब्रह्मचर्य काल को व्यतीत करता है उसकी धूम मच जाती है। इत्यादि।

अन्त में आये हुए विप्रजन आ ब्रह्मन ब्राह्मणो इत्यादि मन्त्रपूर्वक आर्शीवाद दें और यजमान आचार्य आदि का गन्धादि द्वारा पूजन कर दक्षिणा से उनका सम्मान कर विदा करे। मातृगणादि देवों को विसर्जित करे तथा च यथाशक्ति विप्रों को भोजन करावे।

उपनयन में ग्रहों के अशुभ स्थान विचार –

कवीज्य चन्द्र लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमा: ।
व्ययेऽब्ज भार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खला: ।।

व्रतबन्ध में लग्न से छठें, आठवें, भाव में शुक्र, गुरू, चन्द्रमा और लग्नेश अशुभ होते हैं। चन्द्रमा और शुक्र बारहवें भाव में अशुभ होते हैं तथा अशुभग्रह लग्न, अष्टम एवं पंचम भावों में अशुभ होते हैं।

लग्नशुद्धि विचार –

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिता: शोभना: शुभा:।
त्रिषडाये खला: पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ।।

व्रतबन्ध काल में लग्न से ६,८,१२ भावों को छोड़कर शेष भावों में शुभ ग्रह, ३,६,११ भावों में पापग्रह तथा लग्नस्थ पूर्ण चन्द्रमा वृष अथवा कर्क राशि में स्थित हो तो शुभ होता है।

व्रतबन्ध में जन्ममास विचार –

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती।
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ।।

ब्राह्मणों के प्रथम गर्भ से उत्पन्न बालक का उपनयन जन्मनक्षत्र, जन्म मास, जन्म लग्न आदि में भी करने से वटु बालक अधिक विद्वान होता है। क्षत्रिय और वैश्यों के प्रथम गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर द्वितीय आदि पुत्रों का यज्ञोपवीत जन्म लग्न, जन्ममास, एवं जन्म नक्षत्र में करने से वे विद्वान होते है।

निषिद्धकाल –

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके।

प्राक् सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलेग्रहे ।।

कृष्णपक्ष के प्रथम तृतीयांश प्रतिपदा से पंचमी तक छोड़कर अर्थात् षष्ठी से अमावस्या पर्यन्त, प्रदोष काल, अनध्याय , शनिवार, रात्रिकाल, अपराह्न जिस दिन प्रात:काल बादलों का गर्जन हो तथा गलग्रह संज्ञक १,४,७,८,९,१३,१४,१५ तिथियों में व्रतबन्ध शुभ नहीं होता।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में उपनयन संस्कार का संक्षिप्त विवरण दिया हुआ है। उपनयन विधि का-विस्तार आपस्तम्बगृह्यसूत्र, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र एवंगोभिलगृह्यसूत्र में पाया जाता है।

बोधप्रश्न

1. व्यक्ति को द्विजत्व प्राप्त कराने वाला संस्कार का क्या नाम है।
2. यज्ञोपवीत कर्म से किसका धारण होता है।
3. यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों में क्या निहित होता है।
4. 'कर्म कुरू' का अर्थ है।
5. व्रतबन्ध में चन्द्रमा और शुक्र बारहवें भाव में हो तो क्या होता है!

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि उपनयन' वैदिक परंपराका एक महत्वपूर्ण संस्कार है। यह एक प्रकार का शुद्धिकरण हैजिसे करने से वैदिक वर्णव्यवस्था में व्यक्ति द्विजत्व को प्राप्त होता था जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते,अर्थात् वह वेदाध्ययन काअधिकारी हो जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ होता है - नैकट्य प्रदान करना, क्योंकि इसके द्वारा वेदाध्ययन का इच्छुक व्यक्ति वेदशास्त्रों में पारंगत -गुरु/ आचार्य की शरण में जाकर एक विशेष अनुष्ठान के माध्यम से वेदाध्ययन कीदीक्षा प्राप्त करता था, अर्थात् वेदाध्ययन के इच्छुक विद्यार्थी को गुरुअपने संरक्षण में लेकर एक विशिष्ट अनुष्ठान के द्वारा उसके शारीरिक एवंजन्म जन्मांतर दोषों/ कुसंस्कारों -का परिमार्जन कर उसमें वेदाध्ययन के लिएआवश्यक गुणों का आधार करता था, उसे एतदर्थ आवश्यक नियमों (व्रतों) कीशिक्षा प्रदान करता था, इसलिए इस संस्कार को व्रतबन्ध''' भी कहा जाता था।शतपथ ब्राह्मण के अनुसार –**पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।** शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार कराना हो उससे तीन अथवा एक दिन पहले तीन अथवा एक व्रत बालक को करावे। इस समय ब्राह्मण बालक को

दुग्ध पर, क्षत्रिय बालक को यवार्गू (जौ का दलिया) पर और वैश्य बालक को श्रीखण्ड पर रखे। इस प्रकार आपने उपनयन विधि का अध्ययन कर लिया है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

द्विज– ब्राह्मण

संस्काराद् – संस्कार से

वेद– ऋग्वेद, यजु , साम एवं अथर्व वेद

शास्त्र – छ:

वेदाध्ययन– वेद का अध्ययन

कुसंस्कार– बुरे कर्म से युक्त

कवी– शुक्र

इज– वृहस्पति

रिपु– शत्रु

त्रिषडाय – 3,6,11

विधु– चन्द्रमा

3.6बोध प्रश्न के उत्तर

1. उपनयन संस्कार
2. गायत्री का
3. ज्ञान, कर्म एवं उपासना
4. कर्म करो
5. अशुभ

3.7सन्दर्भग्रन्थ सूची

पारस्कर गृह्यसूत्र -

संस्कारदीपक -

हिन्दू संस्कार -

कर्मसमुच्चय -

3.8दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क.उपनयन विधि का विस्तृत वर्णन कीजिये ।

ख. उपनयन निहित कर्मों का उल्लेख कीजिये ।

इकाई 4 वेदारम्भ संस्कार

इकाई की संरचना

4.1प्रस्तावना
4.2उद्देश्य
4.3 वेदारम्भ एवं समावर्तन
बोध प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0के0ए0-201 के दूसरी खण्ड की चौथी इकाई 'वेदारम्भ एवं समावर्तन' से सम्बन्धित है । इसके पूर्व की इकाई में आपने उपनयन विधान का अध्ययन कर लिया है। अब यहॉं प्रस्तुत इकाई में वेदारम्भ एवं समावर्तन संस्कार का अध्ययन करेंगे।

संस्कारों में वेदारम्भ एवं समावर्तन का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जब बालक का उपनयन संस्कार हो जाता है तब वह वेदाध्ययन करने के प्रवृत्त होता है। वेदाध्ययन हेतु वेदारम्भ संस्कार किया जाता है उसी क्रम में समावर्तन संस्कार का भी विधान हैं।

प्रस्तुत इकाई में पाठकों के लिए वेदारम्भ एवं समावर्तन संस्कार का उल्लेख कियाजा रहा है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ❖ वेदारम्भ संस्कार को समझ लेंगे ।
- ❖ वेदारम्भ संस्कार के प्रयोजन को समझा सकेंगे ।
- ❖ वेदारम्भ संस्कार का महत्व निरूपण कर सकेंगे ।
- ❖ समावर्तन क्या है । समझा सकेंगे ।
- ❖ समावर्तन संस्कार कब होता है । बता सकेंगे ।

4.3 वेदारम्भ एवं समावर्तन

वेदारम्भ संस्कारज्ञानार्जन से सम्बन्धित है । वेद का अर्थ होता है ज्ञान औरवेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करेयही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोईप्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्यके जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों काअध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पासगुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों कोब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थेतथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीनेवाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान केअक्षुण्ण भंडार हैं।

गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इससंस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का

केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नानकराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धितपदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों केजल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होताथा। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत केसमय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधिआचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने काअधिकारी समझा जाता था। सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण करता था तथा आचार्यो एवंगुरुजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घर के लिये विदा होता था।

पारम्पर्यागतो येषां वेद: सपरिवृंहण: ।

यच्छाखाकर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा ।।

किसी भी शुभदिन अपनी शाखा के अध्ययन के साथ वेदाध्ययन का आरम्भ किया जाता है। प्राय: यह संस्कार उपनयन संस्कार के साथ ही किया जाता है। उपर उद्धृत वसिष्ठ श्लोक के अनुसार जिस कुल में जिस – जिस वेदशाख के मन्त्रों से यज्ञोपवीत आदि संस्कार होते रहते हैं उस कुल में पहले उस वेद का अध्ययन आरम्भ करना चाहिये, उस वेद की समाप्ति पर दूसरे वेद का अध्ययन आरम्भ करना चाहिए।

विधि–

आचार्य – आचमन, प्राणायम, गणपति पूजनादि कर देशकाल के कीर्तन सहित ऋग्वेदादि के अध्यापन का संकल्प दे। पुन: पंचभू संस्कार पूर्वक लौकिकाग्नि की स्थापना कर कुमार को बुलाकर अग्नि से पश्चिम दिशा में अपने से बायें बैठाये और आज्य भागाहुति पर्यन्त होमविधि पूर्ण करें।

विशेष आहुति -

इसके पश्चात्यदि ऋग्वेद आरम्भ करना हो तो नीचे लिखी दो आहुतियॉ दे –

ॐ पृथिव्यै स्वाहा इदं पृथिव्यै न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये न मम।

यदि यजुर्वेद आरम्भ करना हो तो ये आहुतियॉ दे : -

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा । इदमन्तरिक्षाय नम मम।

ॐ वायवे स्वाहा। इदं वायवे न मम।।

यदि सामवेद आरम्भ करना हो तो निम्नलिखित आहुतियॉ दे –

ॐ दिवे स्वाहा। इदं दिवे न मम।

ऊँ सूर्याय स्वाहा । इदं सूर्याय न मम ।।

यदि अथर्ववेद आरम्भ करना हो तो निम्न आहुतियॉ दे : -

ऊँ दिग्भ्य: स्वाहा । इदं दिग्भ्य: न मम ।

ऊँ चन्द्रमसे स्वाहा । इदं चन्द्रमसे न मम ।।

दो – दो आहुतियों के पश्चात् नीचे लिखी नौ आहुतियॉ दे : -

ऊँ ब्रह्मणे स्वाहा । इदं ब्रह्मणे न मम ।

ऊँ छन्दोभ्य: स्वाहा । इदं छन्दोभ्य: न मम ।

ऊँ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ।

ऊँ देवेभ्य: स्वाहा । इदं देवेभ्य: न मम ।

ऊँ ऋषिभ्य: स्वाहा । इदं ऋषिभ्य: न मम ।

ऊँ श्रद्धायै स्वाहा । इदं श्रद्धायै न मम ।

ऊँ मेधायै स्वाहा । इदं मेधायै न मम ।

ऊँ सदसस्पतये स्वाहा । इदं मेधायै न मम ।

ऊँ अनुमतये स्वाहा । इदं अनुमतये न मम ।

यदि चारों वेदों को एक साथ आरम्भ करे तो उपर लिखी प्रत्येक वेद की दो – दो आहुतियों के पश्चात् ऊँ ब्रह्मणे स्वाहा आदि आहुतियॉ दे ।

इसके पश्चात् महाव्याहृति आदि स्विष्टकृत पर्यन्त दस आहुति दे और संश्रव प्राशन आदि सम्पूर्ण सामान्य होमविधि को पूराकर वेदारम्भ संस्कार को समाप्त करे । पश्चात् मातृगण आदि देवताओं का विसर्जन कर विप्रों को भोजन कराये ।

आजकल देशकाल की प्रथा के अनुसार काशी अथवा काश्मीर गमन आचार्य कराते हैं । यह रीति सूत्रकारों के अनुसार नहीं है । वेदारम्भ संस्कार का शुद्ध अर्थ ही यह है कि जब कुमार वेदाध्ययन आरम्भ करना चाहे तब वह गुरूचरणों अर्थात गुरूकुल में जाकर वेद का अध्ययन आरम्भ करे । विवाह के समय उपनयन वेदारम्भ और समावर्तन संस्कार करना भी वास्तविक संस्कार का स्मरण कराना ही है ।

वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता है, परन्तु मनु आदि शास्त्रकारों ने 16 वें वर्ष में केशान्त संस्कार की भी गणना की है । मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है –

केशान्त: षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।

राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ॥

पारस्कर गृह्यसूत्र में चूड़ाकरण के साथ ही केशान्त का उल्लेख हैं। वहॉ लिखा है -

साम्वत्सरिकस्य चूड़ाकरणम् । षोडशवर्षस्य केशान्तः । यथा मंगलं वा सर्वेषाम्।

यह प्रतीत होता है कि चूड़करण और केशान्त का प्रयोजन एक समान है, अतएव केशान्त को अनेक आचार्यों ने पृथक् संस्कार नहीं गणना किया है। 16 वर्ष की आयु बीत जाने पर 17 वें वर्ष में जब, दाढी मूॅछ व बगल के बालों को छेदन करवाना आरम्भ करे तब प्रथम छेदन के समय यह विधि की जाती है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार चूड़ाकर्म और केशान्त की विधियॉ भी एक समान हैं ।

समावर्तन संस्कार की विधि–

वेदं समाप्य स्नायात् । ब्रह्मचर्यं वा अष्टाचत्वारिंशतेम् । द्वादशकेऽप्येके ॥

वेदाध्ययन की समाप्ति पर यह संस्कार किया जाता है। एक वेद के अध्ययन की समाप्ति हो, दो की हो, तीन की हो, अथवा 48 वर्ष पर्यन्त चारों वेदों के अध्ययन की समाप्ति हो।

आजकल गुरूकुलों और वेदाध्ययन की प्रथा लुप्त हो जाने के कारण उपनयन वेदारम्भ और समावर्तन संस्कार प्रायः एक साथ ही कर लिये जाते हैं। आचार्य की अनुमति मिलने पर ही यह संस्कार होता है।

प्रथम शिष्य से अनुज्ञा मांगे : -

शिष्य - भो आचार्य स्नास्यामि।

आचार्य – स्नाहि।

इस प्रकार अनुज्ञा देकर आचार्य समावर्तन की तैयारी करे। नियत शुभदिन सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो, पत्नी और शिष्य के साथ शुभासन पर बैठकर आचमन – प्राणायाम एवं देश काल के कीर्तन के साथ संकल्प करें –

अस्य शर्मणः गृहस्थाश्रमान्तप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समावर्तनाख्यं कर्माहं करिष्ये । तदंगत्वेन च गणपतिपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धं च करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प पढ़ स्वस्तिवाचनादि विधिपूर्वक करे। पश्चात् होमविधि से कुशकण्डिका आदि कर आज्याभागाहुति पर्यन्त सब विधि करे।

स्वशाखावेदाहुतिः -

जिस शाखा का अध्यापन किया हो उसके अनुसार प्रत्येक वेद के लिये दो – दो तथा सात अन्य के लिए नौ आहुति दे। पश्चात् महाव्याहृति, सर्वप्रायश्चित और स्विष्ट कृत आहुतियॉ दे। पश्चात्

संश्रव, प्राशन – ब्रह्मा को दक्षिणा दान और प्रणीता के जल से मार्जन आदि कर बर्हिहोम करें। ब्रह्मचारी भी होम करें। इसके पश्चात उपनयन संस्कार में उक्त विधि से समिदा धान अंग स्पर्श, आचार्यादि का अभिवादन आदि की विधि करें। और आचार्य 'आयुष्मान भव' कहकर आर्शीवाद दे।

अभिषेक विधि -

समावर्तन संस्कार की यह विशेष एवं मुख्य विधि है। आचार्यादि आशीर्वाद प्राप्त कर ब्रह्मचारी मण्डपाग्नि से उत्तर में प्रागग्र कुशाएं बिछावे और उन पर दक्षिण से उत्तर की ओर क्रमश: 8 जल भरें घड़े रखे। घड़ों से पूर्व में प्रागग्र बिछाये कुशों पर ब्रह्मचारी पूर्वाभिमुख खड़ा हो जाय और आम के पत्रों द्वारा पहले कलश के जल से अभिषेक करे।

ऊँ ये अप्स्वन्तरग्नय: प्रविष्टा गोह्युपगोह्यो मयूखो मनोहास्खलो विरूजस्तनू दूषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि।

इस मन्त्र से जल हाथ में लेकर नीचे लिखे मन्त्र से अपने उपर अभिषेक करे : -

ऊँ तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ।

अब दूसरे कलश में से पूर्वोक्त ये अप्स्वन्त: मन्त्र पढ़कर जल ग्रहण करे और निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे : -

ऊँ येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता गॅू सुरान्। येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यश:।

तीसरी बार भी पूर्वोक्त मन्त्र से जल ग्रहण कर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करें : -

ऊँ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान उर्जे दधात न। महे रणाय चक्षसे।

चौथी बार फिर उसी मन्त्र से चौथे कलश में से जल ग्रहण कर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करे: -

ऊँ यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:। उशतीरिव मातर:।

पॉचवी बार पंचम कलशस्थ जल को फिर उसी मन्त्र से लेकर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करे –

ऊँ तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाव जिन्वथ। आपो जनयथा च न:।

अन्म में मौन ही शेष कलशों के जल से अभिषेक करें।

मेखला विसर्जन–

नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर मेखला को सिर के मार्ग से निकाल कर अलग रख दें –

ऊँ उदुत्तमं वरूण पाशमस्मदबाधमं विमध्यम गॅू श्रथाय। अथावयमादित्य व्रते तवा नागसो अदितये स्याम ।।

दण्डार्जनादि विसर्जन एवं सूर्योपस्थापन

अब दण्ड, अजिन आदि को मौन ही भूमि पर अलग रख दे और मौन ही दूसरे वस्त्र धारण करें। अन्त में एक अंगोछा कन्धे पर डाल कर, नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर सूर्य की उपासना करे : -

ऊॅं उद्यनभ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थात्। प्रातर्यावभिरस्थाद् दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय । उद्यन भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थाद् दिवायावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय । उद्यन भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थात् सायंयावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय।

तत्पश्चात् दधि-तिल-प्राशन-जटा छेदनादि कर्म करते हुए पितृ तर्पण करना चाहिये।

स्नातक नियम–

उक्त कर्मो के पश्चात् आचार्य स्नातक को उन नियमों का उपदेशदे जिनका पालन जीवन में उपयोगी है। नियम इस प्रकार है –

अश्लीलगानवादित्रनृत्यत्याग: । न तत्रगमनम् । क्षेमे सति रात्रौ न ग्रामान्तरे गच्छेत्। न वृथा धावेत्। न कूपेऽवेक्षेत। वृथवृक्षारोहणम् फलत्रोटनं च न कुर्यात्। कुपथा न गच्छेत्। नग्नो न स्नायात्। न सन्धि वेलायां शयीत। न विषमे भूमिं लंघयेत्। अश्लीलमपमानजानकं च वाक्यं नोपवदेत्। उदितास्तमयकाले सूर्यं न पश्येत्। जलमध्ये सूर्यच्छायां न पश्येत् । देवेवर्षति न गच्छेत्। उदके नात्मानं पश्येत्। अजातलोम्नीं प्रमत्तां पुरूषाकृतिं षण्डां च स्त्रियं न गच्छेत्। इसके पश्चात् आचार्य को यथायोग्य दक्षिणा भेंट करे।

पूर्णाहुति–

अब आचार्य खड़े होकर फल – पुष्पों सहित घृत भरे, स्नातक के दाहिने हाथ से स्पर्श कराये श्रुवा से, निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति दें -

ऊॅं मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् । कवि गूॅं सम्राजमतिथिं जनानामासन्न: पात्र जनयन्ता: देवा: स्वाहा।

फिर श्रुवा से भस्म निकाल नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़ते हुए आचार्य एवं शिष्य दायें हाथ की अनामिका अंगुली से ललाट आदि स्थानों पर भस्म का लेप करें : -

ऊॅं त्र्यायुषं जमदग्ने:	मस्तक पर
ऊॅं कस्यपस्य त्र्यायुषम्	कण्ठ पर
ऊॅं यद्देवेषु त्र्यायुषम्	दक्षिण बॉह पर
ऊॅं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्	हृदय पर

अन्त में स्नातक, आचार्यादि मान्य जनों का पूजन कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे और गणपति

आदि देवताओं का विसर्जन कर, यथा शक्ति ब्राह्मणभोजन कराये।

बोधप्रश्न

1.वेदारम्भ संस्कार का सम्बन्ध किससे है।

2. किस संस्कार को करने से व्यक्ति को आचार्यों द्वारा स्नातक की उपाधि दी जाती थी।

3. मनु के अनुसार केशान्त संस्कार होता है।

4. चारों वेदों के लिए अध्ययन का समय माना गया है।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेदारम्भ संस्कारज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान औरवेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करेयही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोईप्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्यके जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों काअध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पासगुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों कोब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थेतथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीनेवाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान केअक्षुण्ण भंडार हैं।गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इससंस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नानकराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धितपदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों केजल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होताथा। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत केसमय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधिआचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने काअधिकारी समझा जाता था।

4.5 शब्दावली

वेदारम्भ– वेद का आरम्भ

विशिष्ट–मुख्य

असंयमित – जो संयमित न हो

गृहस्थाश्रम– आश्रमों में एक

अग्नये – अग्नि के लिये

अन्तरिक्षयाय– अन्तरिक्ष के लिए

विप्र– ब्राह्मण

श्रद्धायै – श्रद्धा के लिए

षोडश– सोलह

ब्राह्मणस्य– ब्राह्मण के लिए

विधु– चन्द्रमा

4.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ज्ञानार्जन से
2. समावर्तन संस्कार
3. 16 वें वर्ष में
4. 48 वर्ष

4.7सन्दर्भग्रन्थ सूची

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक श्री नित्यानन्द पर्वतीय-

हिन्दू संस्कार - डॉ राजबली पाण्डेय.

कर्मसमुच्चय रामजी लाल शास्त्री-

4.8 निबन्धात्मक

क.वेदारम्भ संस्कार विधि लिखिये ।

ख. वेदारम्भ संस्कार का महत्व क्या है वर्तमान परिप्रेक्ष्य में |

इकाई 5 समावर्तन संस्कार

इकाई का प्रारूप

5.1 प्रस्तावना

5.2 उदेश्य

5.3 विषय परिचय

5.4 समावर्तन संस्कार का काल

5.5 समावर्तन संस्कार की विधि

5.5.1 गुरु की आज्ञा प्राप्त करना

5.5.2 पवित्र स्नान:-

5.5.3 नवीन वस्त्र धारण:-

5.5.4 यज्ञ एवं पूजा:-

5.5.6 गुरु उपदेश

5.5.7 दीक्षा उपदेश

5.5.8 गुरु दक्षिणा

5.5.9 गृहस्थ जीवन की अनुमति

5.6 समावर्तन संस्कार का महत्व

5.6.1 शिक्षा की पूर्णता का प्रतीक

5.6.2 चरित्र निर्माण में सहायक

5.6.3 गुरु-शिष्य परंपरा का संरक्षण

5.6.4 सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना

5.6.5 आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास

5.6.6 गृहस्थ जीवन की तैयारी

5.6.7 आधुनिक जीवन में प्रासंगिकता

5.7 बोधात्मक प्रश्न

5.8 सारांश

5.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

5.10 सन्दर्भित ग्रन्थ

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं प्रस्तुत इकाई BAKA-(N)-223 की प्रथम खण्ड (शैक्षिणकोत्तर संस्कार) की पञ्चम इकाई है जिसका शीर्षक "समावर्तन संस्कार" है | इससे पूर्व की इकाईयों में आपने अनेक शैक्षणिकोत्तर संस्कारों के विषय में पढ़ा अब इसी क्रम में हम समावर्तन संस्कार के विषय में विस्तार पूर्वक जानेंगे |

भारतीय सनातन संस्कृति में मानव जीवन को शुद्ध, अनुशासित और आदर्श बनाने के लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करना है। इन्हीं संस्कारों में एक महत्वपूर्ण संस्कार है — समावर्तन संस्कार यह संस्कार ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति तथा गृहस्थ जीवन में प्रवेश की तैयारी का प्रतीक माना जाता है । समावर्तन संस्कार को विद्यार्थी जीवन की पूर्णता और ज्ञानार्जन के सफल समापन का उत्सव भी कहा जाता है । प्राचीन गुरुकुल परंपरा में जब विद्यार्थी वेद, शास्त्र एवं अन्य विद्याओं का अध्ययन पूर्ण कर लेता था, तब गुरु उसकी शिक्षा पूर्ण होने की घोषणा करते थे। इसके पश्चात विद्यार्थी स्नान कर नवीन जीवन की शुरुआत करता था। इसी कारण इसे "स्नातक संस्कार" भी कहा जाता है ।

5.2उदेश्य

- ❖ संस्कारों के परिचय का बोध हो सकेगा |
- ❖ समावर्तन संस्कार क्या है विषय का बोध हो सकेगा |
- ❖ संस्कारों के महत्व से परिचय होगा |
- ❖ समावर्तन और दिक्षा संस्कार में क्या सामानता है बोध होगा |

5.3 विषय परिचय

समावर्तन संस्कार का अर्थ 'समावर्तन' शब्द संस्कृत धातु "वृत्" से बना है, जिसका अर्थ है — लौटना या वापस आना। इसका तात्पर्य है कि विद्यार्थी गुरु के आश्रम से शिक्षा प्राप्त करके अपने घर लौटता है।

यह संस्कार इस बात का प्रतीक है कि अब विद्यार्थी केवल ज्ञान प्राप्त करने वाला शिष्य नहीं रहा, बल्कि समाज का उत्तरदायी नागरिक बनने जा रहा है।

5.4 समावर्तन संस्कार का काल

समावर्तन संस्कार तब किया जाता था जब विद्यार्थी:-

- वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लेता था।
- गुरु उसकी शिक्षा से संतुष्ट हो जाते थे।
- ब्रह्मचर्य व्रत का पालन सफलतापूर्वक कर लेता था।

आमतौर पर यह संस्कार लगभग 25 वर्ष की आयु के आसपास संपन्न होता था, जब विद्यार्थी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के योग्य माना जाता था।

5.5 समावर्तन संस्कार की विधि

5.5.1 गुरु की आज्ञा प्राप्त करना:- विद्यार्थी सबसे पहले अपने गुरु से शिक्षा पूर्ण होने की अनुमति प्राप्त करता था। गुरु उसके ज्ञान, आचरण और अनुशासन की परीक्षा लेते थे।

5.5.2 पवित्र स्नान:- विद्यार्थी नदी, सरोवर या पवित्र जल में स्नान करता था। इस स्नान का उद्देश्य था —

- अज्ञान का त्याग

- नवीन जीवन की शुरुआत
- मानसिक एवं आध्यात्मिक शुद्धि

इसी कारण इसे ‘‘स्नातक संस्कार’’ भी कहा जाता है।

5.5.3 नवीन वस्त्र धारण:- स्नान के बाद विद्यार्थी नए वस्त्र धारण करता था। यह नए जीवन और नई जिम्मेदारियों का प्रतीक माना जाता था।

5.5.4 यज्ञ एवं पूजा:- गुरु के सान्निध्य में हवन और देवपूजन किया जाता था। ईश्वर से ज्ञान, सद्बुद्धि और सफल जीवन की कामना की जाती थी।

5.5.6 गुरु उपदेश:- समावर्तन संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण भाग गुरु का उपदेश होता था। गुरु अपने शिष्य को जीवन के नैतिक सिद्धांत बताते थे, जैसे —

- सत्य बोलना
- धर्म का पालन करना
- माता-पिता का सम्मान करना
- अतिथि सेवा करना
- समाज के प्रति कर्तव्य निभाना

5.5.7 दीक्षा उपदेश :-शिक्षा सम्पन्न होने के बाद गुरु अपने शिष्यों को दिक्षा उपदेश देते हैं जिसका वर्णन तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार मिलता है - समावर्तन संस्कार में गुरु द्वारा शिष्य को दिए जाने वाले उपदेश मुख्यतः तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित हैं। इन्हें ‘‘दीक्षांत उपदेश’’ कहा जाता है।

उपदेश - 1. सत्यं वद। धर्मं चर।
स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः॥

अर्थ:-

- सत्य बोलो।
- धर्म का आचरण करो।
- अध्ययन और ज्ञान प्राप्ति में आलस्य मत करो।
- गुरु को प्रिय दक्षिणा देकर गृहस्थ जीवन एवं समाज की परंपरा को आगे बढ़ाओ।

उपदेश-2. मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव॥

अर्थ:-

- माता को देवतुल्य मानो।
- पिता को देवतुल्य मानो।
- गुरु को देवतुल्य मानो।
- अतिथि को देवतुल्य मानो।

सदाचार संबंधी उपदेश:- 3. यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि॥

अर्थ:- जो कर्म दोषरहित और श्रेष्ठ हों, उन्हीं का पालन करना चाहिए; बुरे कर्मों से दूर रहना चाहिए।

दान और व्यवहार संबंधी उपदेश:-4.

श्रद्धया देयम्।
अश्रद्धया अदेयम्।
श्रिया देयम्।

ह्रिया देयम्।

भिया देयम्।

संविदा देयम्॥

अर्थ:-

- श्रद्धा से दान दो।
- बिना श्रद्धा के दान न दो।
- विनम्रता, भय (कर्तव्यबोध) और सद्भावना से दान दो।

निष्कर्ष:- उक्त दीक्षांत उपदेश केवल धार्मिक शिक्षा नहीं, बल्कि आदर्श जीवन जीने की संहिता हैं। समावर्तन संस्कार के माध्यम से गुरु अपने शिष्य को सत्य, धर्म, सेवा, विनम्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व का संदेश देते थे।

5.5.8 गुरु दक्षिणा:- विद्यार्थी अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार गुरु को दक्षिणा देता था। यह गुरु के प्रति सम्मान और कृतज्ञता का प्रतीक था।

5.5.9 गृहस्थ जीवन की अनुमति:- अंत में गुरु विद्यार्थी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की अनुमति देते थे और समाज सेवा के लिए प्रेरित करते थे।

5.6 समावर्तन संस्कार का महत्व

भारतीय संस्कृति में समावर्तन संस्कार सोलह संस्कारों में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। यह संस्कार विद्यार्थी जीवन की पूर्णता तथा गृहस्थ जीवन में प्रवेश की तैयारी का प्रतीक है। प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में जब शिष्य अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेता था, तब गुरु द्वारा यह संस्कार संपन्न कराया जाता था। समावर्तन संस्कार केवल शिक्षा समाप्ति का समारोह नहीं था, बल्कि व्यक्ति को आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला संस्कार था।

5.6.1 शिक्षा की पूर्णता का प्रतीक:- समावर्तन संस्कार विद्यार्थी के अध्ययन पूर्ण होने का प्रतीक था। इसके माध्यम से यह घोषणा की जाती थी कि शिष्य अब ज्ञान प्राप्त कर समाज में अपने कर्तव्यों का पालन करने योग्य बन चुका है।

5.6.2 चरित्र निर्माण में सहायक:- इस संस्कार में गुरु शिष्य को सत्य, धर्म, अनुशासन और सदाचार का उपदेश देते थे। इससे विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण होता था और उसमें नैतिक गुणों का विकास होता था।

5.6.3 गुरु-शिष्य परंपरा का संरक्षण:-समावर्तन संस्कार भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा की महानता को दर्शाता है। गुरु अपने शिष्य को केवल शिक्षा ही नहीं देते थे, बल्कि जीवन जीने की सही दिशा भी प्रदान करते थे। शिष्य द्वारा गुरु दक्षिणा देना सम्मान और कृतज्ञता का प्रतीक था।

5.6.4 सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना:-इस संस्कार के माध्यम से विद्यार्थी को समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध कराया जाता था। उसे समाज सेवा, परिवार पालन और राष्ट्रहित के कार्यों के लिए प्रेरित किया जाता था।

5.6.5 आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास:-समावर्तन संस्कार व्यक्ति को धर्म, सत्य और आत्मसंयम का पालन करने की शिक्षा देता था। इससे व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास भी होता था।

5.6.6 गृहस्थ जीवन की तैयारी:-समावर्तन संस्कार के बाद विद्यार्थी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इसलिए यह संस्कार उसे जिम्मेदारियों को निभाने के लिए मानसिक रूप से तैयार करता था।

5.6.7 आधुनिक जीवन में प्रासंगिकता:-आज के समय में विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोह समावर्तन संस्कार का आधुनिक रूप माने जाते हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भी इस संस्कार के आदर्श—अनुशासन, नैतिकता, गुरु सम्मान और समाज सेवा—बहुत महत्वपूर्ण हैं।

5.7 बोधात्मक प्रश्न

1. समावर्तन संस्कार किस आश्रम की समाप्ति का प्रतीक है?

(A) गृहस्थ आश्रम
(B) वानप्रस्थ आश्रम
(C) ब्रह्मचर्य आश्रम
(D) संन्यास आश्रम

2. समावर्तन संस्कार को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

(A) उपनयन संस्कार
(B) विवाह संस्कार
(C) स्नातक संस्कार
(D) नामकरण संस्कार

3. 'समावर्तन' शब्द का अर्थ क्या है?

(A) शिक्षा आरंभ करना
(B) घर लौटना
(C) विवाह करना
(D) यज्ञ करना

4. समावर्तन संस्कार कब किया जाता था?

(A) जन्म के समय
(B) विवाह के समय
(C) शिक्षा पूर्ण होने पर
(D) मृत्यु के बाद

5. समावर्तन संस्कार में विद्यार्थी किससे अनुमति प्राप्त करता था?

(A) राजा से
(B) माता-पिता से

(C) गुरु से
(D) मित्रों से

6. समावर्तन संस्कार में स्नान का क्या महत्व था?

(A) मनोरंजन
(B) शुद्धि और नवीन जीवन
(C) स्वास्थ्य लाभ
(D) उत्सव मनाना

7. समावर्तन संस्कार में गुरु क्या देते थे?

(A) धन
(B) आभूषण
(C) नैतिक उपदेश
(D) भोजन

8. "सत्यं वद, धर्मं चर" उपदेश किससे संबंधित है?

(A) विवाह संस्कार
(B) समावर्तन संस्कार
(C) नामकरण संस्कार
(D) अन्नप्राशन संस्कार

9. समावर्तन संस्कार के बाद विद्यार्थी किस आश्रम में प्रवेश करता था?

(A) संन्यास आश्रम
(B) वानप्रस्थ आश्रम
(C) ब्रह्मचर्य आश्रम
(D) गृहस्थ आश्रम

10. गुरु दक्षिणा का उद्देश्य क्या था?

(A) धन संग्रह

(B) व्यापार

(C) गुरु के प्रति सम्मान प्रकट करना

(D) उत्सव मनाना

5.8 सारांश

समावर्तन संस्कार भारतीय संस्कृति का अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार है। यह केवल शिक्षा समाप्ति का समारोह नहीं, बल्कि जिम्मेदार जीवन की शुरुआत का प्रतीक है। यह संस्कार व्यक्ति को ज्ञान, अनुशासन, नैतिकता और समाज सेवा की प्रेरणा देता है। आज भले ही समय बदल गया हो, लेकिन समावर्तन संस्कार के आदर्श आज भी उतने ही उपयोगी और प्रेरणादायक हैं। यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भी इन मूल्यों को अपनाया जाए, तो समाज अधिक नैतिक, अनुशासित और संस्कारित बन सकता है। समावर्तन संस्कार भारतीय संस्कृति का एक आदर्श और प्रेरणादायक संस्कार है। यह व्यक्ति को केवल विद्वान ही नहीं, बल्कि नैतिक, जिम्मेदार और आदर्श नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। आधुनिक समाज में भी इसके मूल्यों को अपनाकर व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण किया जा सकता है।

5.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. C ,**2.** C , **3.** B, **4.** C, **5.** C, **6.** B, **7.** C, **8.** B, **9.** D, **10.** C

5.10 सन्दर्भित ग्रन्थ

I. हिंदू संस्कार - पं. राजबली पाण्डेय

ii.भारतीय संस्कृति के संस्कार - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

iii.वैदिक संस्कार विधि - सत्यव्रत सामश्रमी

iv.संस्कार एवं संस्कृति- रामनारायण शुक्ल

v.कर्मकाण्ड प्रदीप

vi.कर्मकाण्ड भाष्कर

vii.कर्मठ गुरु

viii.कर्मकाण्ड भाष्कर

ix.कर्मकाण्ड दिवाकर

x. वैदिक संस्कार पद्धति

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.समावर्तन संस्कार का विस्तारपूर्वक परिचय दीजिए |

2.समावर्तन संस्कार के महत्व को लिखिए |

3. भारतीय परम्परा में संस्कारों का वैशिष्ट्य क्या है विस्तारपूर्वक लिखिए |

खण्ड 2 विविध स्कन्ध

इकाई 1 विवाह प्रयोजन एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विवाह परिचय

1.4 अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं प्रयोजन

बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0के0ए0-(N)-223 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई **'विवाह – प्रयोजन एवं महत्व"** से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कारों में अक्षराम्भ, उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्तन का अध्ययन कर लिया है। यहॉ अब आप विवाह का अध्ययन करेंगे। विवाह भारतीय सनातन परम्परा के प्रमुख संस्कारों में एक है। विवाह एक ऐसा अटूट बन्धन हैं जिसमें बन्धकर मानव गृहस्थ जीवन में अपना जीवनयापन करता हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- ❖ विवाह को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ विवाह के कितने प्रकार है, बता सकेंगे।
- ❖ विवाह के प्रयोजन को समझा सकेंगे।
- ❖ विवाह के अर्थों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ विवाह महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।

1.3 विवाह परिचय

वेदाध्ययन एवं ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति के पश्चात् समावर्तन संस्कार होने पर जब कुमार घर लौटता है तो प्रजोत्पत्ति की इच्छा से अपने अनुकूल पत्नी का ग्रहण करता है। यह उसका विवाह अथवा उद्वाह कहा जाता है। इस समय जो संस्कार किया जाता है वह विवाह संस्कार कहलाता है।

सूत्रकारों ने प्रत्येक संस्कार का एक निश्चित समय बताया है। इसका मुख्य आधार संस्कार की उपयोगिता है। विवाह संस्कार का ठीक समय जानने के लिए, विवाह के प्रयोजन को समझना चाहिए।

विवाह का प्रयोजन एक सर्वसम्मत सी बात है। कन्या का पिता कन्या दान के समय जो संकल्प पढ़ता है, वह इसके प्रयोजन का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इस संकल्प में निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य है –

अस्या मम कन्याया अनेन वरेण धर्म्यप्रजया उभयोर्वंशयोर्वंशवृद्धयर्थं तथा च मम समस्तपितृणां निरतिशयसानन्द ब्रह्मलोकावाप्त्यादिश्रुतिस्मृतिपुराणादिकन्यादानकल्पोक्तफलप्राप्तये अनेन

वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसन्तत्यादशपूर्वान्दशपरान्मां चैकविंशतिं पुनरूद्धर्तु ...... इत्यादि।

संकल्प के इन शब्दों से स्पष्ट है कि विवाह संस्कार का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति द्वारा अपने पितरों का उद्धार करना है इसीलिए सुश्रुतकार कहते हैं -

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमावहेत् । पित्र्यधर्मार्थकामप्रजा: प्राप्स्यतीति।

ऋग्वेद में बताया गया है –

सोम: प्रथमो विविदे गन्धर्व विविद उत्तर:। तृतीयोऽग्निस्ते पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा:।
सोमो दद् गन्धवा्रय गन्धर्वोददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ।।

अर्थात् कन्या का प्रथम पति सोम अर्थात् चन्द्रमा है फिर गन्धर्व इसको प्राप्त करता है। तीसरा पालक देवता अग्नि है। चौथा पति मानव है। सौम्य का प्रतिनिधि सोम कन्या को सौम्य गुणों एवं कान्ति से युक्त करके गन्धर्व को सौंपता है, जो अपने क्रम में उसके कण्ठ तालु आदि में स्वर भरता है। इसके पश्चात् इसमें उष्णता का समावेश अग्नि के सम्पर्क से होता है – यह अग्निदेवता पति पत्नी को ऐश्वर्य एवं प्रजा के योग्य बनाते है।

विवाह का शाब्दिक अर्थ है – विशिष्ट वहन, विशिष्ट प्रकारेण वाहयतीति विवाह:। अब प्रश्न उठता है कि किसका वहन? तो जिसके साथ गृहस्थ जीवन में बॅंधने व जीवनयापन के लिए वह सम्बन्ध स्थापित करता है। वह एक कन्या होती है, जो विवाह संस्कार के पश्चात् पत्नी की संज्ञा से संबोधित होती है। भारतीय सनातन परम्परा के अनुसार विवाह एक पवित्र बन्धन है, जिसमें मनुष्य बंधकर सुखीपूर्वक गृहस्थ जीवन का संचालन करता है। इस बन्धन में पुरानी रीति के अनुसार दो अपरिचित लोगों का मिलन होता था, सम्प्रति वह बदल गया है। आजकल विवाह पूर्व में ही सम्बन्ध स्थापित कर किया जा रहा है, जिसे प्रेम का नाम दिया जाता है। जो वस्तुत: प्रेम से भिन्न है।

विवाह केवल दो लोगों का मिलन नहीं होता, अपितु दो पवित्र आत्माओं का मिलन होता है। आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में विवाह प्रयोजन को बतलाते हुए कहा है कि –

भार्या त्रिवर्ग करणं शुभशीलयुक्ता।
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्या:।।
तस्माद्विवाहसमये परिचिन्त्यते हि।
तन्निघ्नतामुपगता सुतशीलधर्मा।।

अर्थात् भार्या त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, एवं काम) को देने वाली, शुभ आचरण से युक्त तथा शीलवती होनी चाहिए। विवाह के समय यह परीक्षण करने का आदेश दिया गया है। यह विचार कर ही

विवाहादि कार्य करने का विधान आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित है।

विवाह के प्रकार -

ब्राह्मं दैवस्तथा चाऽऽर्षः प्राजापत्यतथाऽसुर।:

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम ॥:

1. **ब्राह्म विवाह** –ब्रह्म विधि द्वारा तय की गई विवाह '**ब्रह्म विवाह**' है। या दूसरे शब्दों **में** वर एवं कन्या दोनों पक्षों की सहमति से समान वर्ग के सुयोग्य वर से कन्या का विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है।
2. **देव विवाह** - किसी सेवा कार्य विशेषतधार्मिक अनुष्ठा:नों के मूल्य के रूप में अपनी कन्या को दान में दे देना '**दैव विवाह**' कहलाता है।
3. **आर्ष विवाह -**कन्या पक्ष वालों को कन्या का मूल्य देकर सामान्यत गोदान करके:कन्या से विवाह कर लेना आर्ष विवाह कहलाता है।
4. **प्राजापत्य विवाह** –कन्या की सहमति के बिना उसका विवाह अभिजात्य वर्ग के वर से कर देना '**प्राजापत्य विवाह**' कहलाता है।
5. **गान्धर्व विवाह** –परिवार वालों की सहमति के बिना वर और कन्या का बिना किसी रीति रिवाज के आपस में विवाह कर लेना '**गान्धर्व विवाह**' कहलाता है। जैसे दुष्यंत ने शकुन्तला से '**गान्धर्व विवाह**'किया था, उनके पुत्र भरत के नाम से ही हमारे देश का नाम '**भारतवर्ष**' बना।
6. **असुर विवाह**–आर्थिक रूप से खरीद कर विवाह कर लेना **'असुर विवाह'** कहलाता है
7. **राक्षस विवाह** –कन्या की सहमति के बिना, उसका अपहरण करके जबरन विवाह कर लेना **राक्षस विवाह** कहलाता है।
8. **पैशाच विवाह –**कन्या की मदहोशी, मानसिक स्थित कमजोर होने का फायदा उठाकर उससे शारीरिक सम्बन्ध बना लेना और उससे विवाह करना **पैशाच विवाह** कहलाता है।

विवाह दो आत्माओं का पवित्र मिलन है। दो प्राणी अपने अलग – अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते है। स्त्री और पुरूष दोनों में परमात्मा ने कुछ विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी है। विवाह सम्मिलन से एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते है। इससे समय तथा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक – एक आवश्यकता माना गया है। एक – दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाने हेतु गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति पथ पर

अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है। वासना वैवाहिक जीवन का एक भाग है शारीरिक सुख एवं संतुलित चित्त के लिए यह किया जाता है। दोनों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति संतुलित व संयमित रहे इसके लिए यह क्रिया आवश्यक है।

विवाह के स्वरूप–

विवाह का स्वरूप आज विवाह वासना प्रधान बनते चल जा रहे है। रंग रूप एवं वेश – विन्यास के आकर्षण को पति – पत्नी के चुनाव में प्रधानता दी जाने लगी है, यह प्रवृत्ति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। यदि लोग इसी तरह सोचते रहे, तो दाम्पत्य जीवन शरीर प्रधान रहने से एक प्रकार के वैध – व्यभिचार का ही रूप धारण कर लेगा। पाश्चात्य जैसी स्थिति भारत में भी आ जायेगा। शारीरिक आकर्षण की न्यूनाधिकता का अवसर सामने आने पर विवाह शीघ्रता से विच्छेद और सन्धि होते रहेंगे। अभी पत्नी का चुनाव शारीरिक आकर्षण का ध्यान में रखकर किये जाने वाला प्रथा चली है। थोड़े ही दिनों में इसकी प्रतिक्रिया पति के चुनाव में भी सामने आयेगी। तब कुरूप पतियों को कोई पत्नी पसन्द नहीं करेगी और उन्हें दाम्पत्य सुख से वंचित ही रहना पड़ेगा। समय रहते ही इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और शारीरिक आकर्षण की उपेक्षा कर सद्गुणों तथा सद्भावनाओं को ही विवाह का आधार पूर्वकाल तरह बने रहने देना चाहिए शरीर का नहीं। आत्मा का सौन्दर्य देखा जाना चाहिए और जीवन साथी में जो कमी है, उसे प्रेम सहिष्णुता, आत्मीयता एवं विश्वास की छाया में जितना सम्भव हो सके, सुधारना चाहिए जो सुधार न हो सके, उसे बिना असन्तोष लाये सहन करना चाहिए। इस रीति – नीति पर दाम्पत्य जीवन की सफलता निर्भर है। अतएव पति – पत्नी को एक दूसरे से आकर्षण लाभ मिलने की बात न सोचकर एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करने और सम्मिलित शक्तिउत्पन्न करने, उसके जीवन विकास की सम्भावनायें उत्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए। चुनाव करते समय तक साथी को पसन्द करने न करने की छूट है। जो कुछ देखना – ढूँढना परखना हो वह कार्य विवाह से पूर्व ही समाप्त कर लेना चाहिए। जब विवाह हो गया तो फिर यह कहने की गुंजाइश नहीं रहती कि भूल हो गई, इसलिए साथी की उपेक्षा की जाए। जिस प्रकार के भी गुण – दोष युक्त साथी के साथ विवाह बन्धन में बंधे उसे अपनी और से कर्तव्य पालन समझकर पूरा करना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। इसी के लिए विवाह संस्कार का आयोजन किया जाता है। समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की गुरूजनों की, कुटुम्बी सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थित इसलिए इस धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस कर्तव्य बन्धन की उपेक्षा करे तो उसे रोके और प्रताडित करे। पति – पत्नी इन सम्भ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपनी निश्चय की प्रतिज्ञा, बन्धन की घोषणा करते है। यह प्रतिज्ञा समारोह की विवाह संस्कार है।

इस अवसर पर दोनों की ही यह भावनायें गहराई तक अपने मन में स्थिर करनी चाहिए कि वे पृथक व्यक्तियों की सत्ता समाप्त कर एकीकरण की आत्मीयता में विकसीत होते है । कोई किसी पर न तो हुकूमत जमायेगा, न अपने अधीन वशवर्ति रखकर अपने लाभ या अहंकार की पूर्ति करनी चाहेंगे । वरन् वह करेगा जिससे साथी को सुविधा मिलती हो । दोनों अपनी इच्छा आवश्यक को गौण और साथी की आवश्यकता को मुख्या मानकर सेवा और सहायता का भाव रखेंगे, उदारता एवं सहिष्णुता बर्तेंगे, तभी गृहस्थी का रथ ठीक तरह आगे बढ़ेगा । इस तथ्य को दोनो भली प्रकार हृदयंगम कर ले और इसी रीति – नीति को आजीवन अपनाये रखने का व्रत धारण करे, इसी प्रयोजन के लिये यह पुण्य संस्कार आयोजित किया जाता है । इस बात को दोनो भली प्रकार समझ ले और सच्चे मन से स्वीकार कर ले, तो ही विवाह बन्धन में बचे । विवाह संस्कार आरम्भ करने से पूर्व या वेदी पर बैठाकर दोनों को यह तथ्य भली प्रकार समझा दिया जाये और उनकी सहमती मॉगी जाये । यदि दोनों इन आदर्शों को अपनाये रहने की हार्दिक सहमती, स्वीकृति दें, तो ही विवाह संस्कार आगे बढ़ाया जाये ।

विवाह प्रयोजन –

प्राचीनकाल में आचार्यों द्वारा विवाह प्रयोजन में उसका मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति कहा गया है ।साथ ही गृहस्थ जीवन के सुख – दु:ख में एक सहभागिनी के रूप में पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान कहा गया है । जीवन रूपी गाड़ी दो पहिये पर चलती है उसमें एक पुरूष है तो दूसरी स्त्री । दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है । अत: उक्त कार्य के लिए विवाह आवश्यक है ।

प्राचीन इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विवाह ऋतुमती होने पर ही करना चाहिए । नल दमयन्ती, दुष्यंत शकुन्तला और सत्यवान –सावित्री के विवाह तो स्पष्ट ही ऋतुमती कन्याओं के विवाह थे । राम – सीता के विवाह के समय सीता की आयु 6-7 वर्ष की कही जाती है, परन्तु मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र के लिए यह सर्वथा उपयुक्त था कि वे ब्रह्मचर्यव्रत की समाप्ति पर ही विवाह करे । अतएव उनके विषय में ऐसा विचार लाना ही अनुपयुक्त है । उस समय राजकुमारियों के वर्णन में वाल्मीकी रामायण का निम्नलिखित शलोक देने योग्य है –

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुताश्च ता: ।
रेमिरे मुदिता: सर्वा भ्रातृभिर्मुदितै रह: ।

बोध प्रश्न -

1. ऋग्वेद के अनुसार कन्या का प्रथम पति माना जाता है।
2. विवाह के कितने प्रकार है।
3. प्राचीन आचार्यों के अनुसार विवाह का मुख्य प्रयोजन है।
4. वेदाध्ययन एवं समावर्तन के पश्चात् कौन सा संस्कार किया जाता है।
5. विवाह दो आत्माओं का .... मिलन है

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेदारम्भ संस्कारज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान औरवेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करेयही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोईप्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्यके जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों काअध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पासगुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों कोब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थेतथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीनेवाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान केअक्षुण्ण भंडार हैं।गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इससंस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नानकराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धितपदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों केजल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होताथा। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत केसमय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधिआचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने काअधिकारी समझा जाता था।

1.5 शब्दावली

षोडश– सोलह(16)

पंचविंशति– 25

सोम– चन्द्रमा

पालक– पालने वाला

त्रिवर्ग– धर्म, अर्थ एवं काम

भार्या– पत्नी

सन्तानोत्पत्ति–सन्तान की उत्पत्ति

परीक्षण– जॉच

धर्मार्थ– धर्म के लिए

एकविंशति – 21

पितृणां– पितरों का

1.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. सोम (चन्द्रमा)

2. आठ

3. सन्तानोत्पत्ति

4. विवाह

5. पवित्र

1.7 सन्दर्भित ग्रन्थ

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक श्री नित्यानन्द पर्वतीय-

हिन्दू संस्कार - डॉ राजबली पाण्डेय.

कर्मसमुच्चय रामजी लाल शास्त्री-

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

क.विवाह से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये ।

ख. विवाह परिचय देते हुए उसके स्वरूप एवं महत्व का प्रतिपादन कीजिये ।

इकाई 2 विवाह संस्कार

इकाई का प्रारूप

2.1 प्रस्तावना

2.2 उदेश्य

2.3 विषय परिचय

2.3.1 विवाह संस्कार का उद्देश्य

2.4 विवाह संस्कार की प्रमुख विधियाँ

2.5 पूजन विधान

2.5.2 कन्यादान

2.5.3 पाणिग्रहण संस्कार:-

2.5.4 अग्नि स्थापना

2.5 सप्तपदी के सात वचन

2.5.1 सप्तपदी मंत्र

2.6 विवाह संस्कार का महत्व

2.7 वोधातामक प्रश्न

2.8 आधुनिक संदर्भ में विवाह संस्कार

2.9 सारांश

2.10 वोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भित पाठ्य सामग्री

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय अद्येताओं प्रस्तुत इकाई बी.ए.के.ए.(N)-223 के शिक्षनोत्तर संस्कार के द्वितीय खण्ड (विवाह एवं अन्य विचार) की द्वितीय इकाई “विवाह संस्कार” है | इससे पूर्व की इकाई में आपने विवाह प्रयोजन एवं महत्व को पढ़ा अब इसी क्रम में विवाह संस्कार के विषय में विस्तार पूर्वक पढेंगे | जैसे कि पूर्व में आपने विवाह के प्रयोजन को जाना कि हमारे यहाँ (सनातन धर्म) में विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति कर पितृ ऋण से मुक्त होना | भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को शुद्ध, मर्यादित और आदर्श बनाने के लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों में **विवाह संस्कार** का विशेष महत्व है। यह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्कि दो परिवारों, संस्कृतियों और जीवन मूल्यों का पवित्र संबंध माना जाता है। हिंदू धर्म में विवाह को एक धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार माना गया है। इसका उद्देश्य केवल दाम्पत्य जीवन स्थापित करना नहीं, बल्कि धर्म पालन, संतान उत्पत्ति, परिवार निर्माण तथा समाज व्यवस्था को बनाए रखना भी है। विवाह संस्कार के माध्यम से स्त्री और पुरुष गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। आइये विस्तारपूर्वक विवाह संस्कार को विधि सहित जानेंगे |

2.2 उदेश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप को विषय वस्तु का पूर्ण रूप से बोध हो सकेगा |
- विवाह संस्कार क्या है इसका बोध हो सकेगा |
- भारतीय परम्परा में विवाह का मुख्य उदेश्य क्या है इन सब बातों से परिचय हो सकेगा |
- विवाह के प्रकार और पद्धति क्या है बोध होगा |
- साथ ही संस्कारों की सामाजिकता और वैज्ञानिकता का भी बोध हो सकेगा |

2.3 विषय परिचय

विवाह संस्कार का अर्थ- 'विवाह' शब्द संस्कृत धातु "वह" से बना है, जिसका अर्थ है — वहन करना या साथ लेकर चलना। विवाह का तात्पर्य है कि पति और पत्नी जीवनभर एक-दूसरे का साथ निभाने का संकल्प लेते हैं। साथ ही विवाह के कई पर्याय नाम भी है | जैसे पाणीग्रहण संस्कार , आदि | सनातनी परम्परा में विवाह को पवित्र बंधन माना गया है,क्यूंकि यहीं से चतुर्वर्ग (धर्म-काम-अर्थ – मोक्ष |) पुरुषार्थ की सिद्धि | भी जीव कर सकता है | विवाह में पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल इस जन्म तक सीमित न होकर सात जन्मों का संबंध माना जाता है। ऐसी धार्मिक मान्यताएँ है |

2.3.1 विवाह संस्कार का उद्देश्य- विवाह संस्कार के विभिन्न उदेश्य हैं इनको देखने का पक्ष भी अलग-अलग पंथ ,धर्मआदि में मान्यताएं अलग –अलग हैं | सनातनी परम्परा में गृहस्थ आश्रम की शुरुआत विवाह के अन्तर ही होती है , जहाँ अनेक कर्तव्य अनुशासित व्यवस्थित जीवन का प्रादुर्भाव शुरू होता है |

- **. धर्म पालन-:** पति-पत्नी मिलकर धार्मिक कार्यों और कर्तव्यों का पालन करते हैं।
- **संतान उत्पत्ति:-** विवाह का प्रमुख उद्देश्य योग्य संतान उत्पन्न कर परिवार एवं समाज की निरंतरता बनाए रखना है।
- **3. गृहस्थ जीवन की स्थापना:-**विवाह के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है और परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाता है।
- **सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना:-** विवाह समाज में अनुशासन, मर्यादा और नैतिकता बनाए रखने में सहायक होता है।
- **मानसिक एवं भावनात्मक सहयोग:-**पति-पत्नी एक-दूसरे के सुख-दुख के साथी बनते हैं और जीवन में सहयोग प्रदान करते हैं।

2.4 विवाह संस्कार की प्रमुख विधियाँ

भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार को अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण माना गया है। यह केवल सामाजिक संबंध नहीं, बल्कि धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़ा संस्कार है। विवाह संस्कार अनेक विधियों और अनुष्ठानों के माध्यम से संपन्न किया जाता है। प्रत्येक विधि का अपना विशेष महत्व होता है।

- **वर-वधू चयन:-** प्राचीन समय में परिवार एवं गुणों के आधार पर वर-वधू का चयन किया जाता था। विवाह संस्कार का पहला चरण योग्य वर और वधू का चयन है। प्राचीन समय में परिवार, गुण, संस्कार, शिक्षा और कुल परंपरा को ध्यान में रखकर चयन किया जाता था।
- **वाग्दान (सगाई) :-** इस विधि में दोनों परिवार विवाह का निर्णय सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते हैं। वर और वधू को आशीर्वाद दिया जाता है तथा उपहारों का आदान-प्रदान होता है। इसमें दोनों परिवार विवाह का निश्चय करते हैं।
- **मंडप स्थापना:-** विवाह हेतु शुभ मंडप तैयार किया जाता है, जहाँ धार्मिक अनुष्ठान संपन्न होते हैं।

2.5 पूजन विधान

विवाह संस्कार कर्म में पूजन विधान का बड़ा महत्व है साथ ही यह पूजन प्रक्रिया वृहद् और परम्परागत भी होती है | जैसे की आप सभी को विदित है , सभी मांगलिक कार्यों में भगवान् गणेश जी कि वन्दना अर्चना की जाती है |

- **2.5.1 गणेश पूजन:-** विवाह कार्य निर्विघ्न संपन्न हो, इसके लिए भगवान गणेश की पूजा की जाती है। कोई भी शुभ हिंदू कार्य भगवान गणेश (विघ्नहर्ता) के आह्वान के बिना शुरू नहीं होता। पंडित जी यह सुनिश्चित करने के लिए मंत्रोच्चार करते हैं कि विवाह बिना किसी बाधा के पूरा हो। इसके तुरंत

बाद *पुण्याहवाचन* होता है, जहाँ पवित्र जल और आम के पत्तों से भरे कलश का उपयोग मंडप, पूजा सामग्री और जोड़े के मन को शुद्ध करने के लिए किया जाता है।

2.5.2 कन्यादान: विवाह संस्कार में कन्यादान का अत्यन्त महत्व है | कन्या के माता-पिता अपनी पुत्री का हाथ वर को सौंपते हैं।और उक्त मन्त्र को स्वयं व पुरोहित आचार्य उचारण करते हैं - **इयं कन्या सुवर्चसा सह धर्मचारिणी तुभ्यं समर्पिता। प्रतिगृह्णीष्व पाणिना॥** कन्यादान को अत्यंत पवित्र और सौभाग्य युक्त कार्य माना जाता है।

2.5.3 पाणिग्रहण संस्कार:- कन्यादान संकल्प के पश्चात पानिग्रहन होता है इसका अभिप्राय है-वर वधू का हाथ पकड़कर जीवनभर साथ निभाने का वचन देता है।

7. अग्नि स्थापना और हवन:- विवाह संस्कार में हवन हेतु अग्निस्थापन वैदिक मन्त्रों से किया जाता है जिसके अन्तर्गत वर- वधु अग्नि को साक्षी मानकर वैदिक मंत्रों के साथ हवन किया जाता है ।

2.5 सप्तपदी के सात वचन

शास्त्रों के अनुसार विवाह संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण भाग सप्तपदी है। पति-पत्नी अग्नि के चारों ओर सात फेरे लेते हैं और सात वचन लेते हैं ।साथ ही निम्नलिखित मन्त्रों का उचारण किया जाता है – अग्नि के चारों ओर फेरे लेते समय मंत्रोच्चारण किया जाता है।

ॐ इहैव स्तं मा विचरन्तु विश्वाहा।
आयुर्वर्धन्तु वां सह॥ अर्थ- तुम दोनों साथ रहो और दीर्घायु प्राप्त करो।

सात वचनों का अर्थ इस प्रकार है |

1. अन्न एवं पोषण की व्यवस्था
2. शक्ति और स्वास्थ्य
3. धन एवं समृद्धि
4. सुख और सहयोग
5. संतान एवं पालन-पोषण
6. ऋतुचर्या एवं धर्म पालन
7. जीवनभर साथ और मित्रता

2.5.1 सप्तपदी मंत्र:-सात फेरों के समय प्रत्येक फेरे में अलग मंत्र बोला जाता है।

प्रथम फेरा- एकमिषे विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: अन्न और पोषण की प्राप्ति हो।

द्वितीय फेरा-ऊर्जे विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त हो।

तृतीय फेरा- रायस्पोषाय विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: धन और समृद्धि प्राप्त हो।

चतुर्थ फेरा-मयोभवाय विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: सुख और आनंद प्राप्त हो।

पंचम फेरा-पशुभ्यः विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: संतान और समृद्धि प्राप्त हो।

षष्ठ फेरा- ऋतुभ्यः विष्णुस्त्वान्वेतु॥
अर्थ: सभी ऋतुओं में स्वास्थ्य एवं संतुलन बना रहे।

सप्तम फेरा-सखायो सप्तपदा भव।।
अर्थ: अब हम जीवनभर के मित्र और साथी बन गए हैं।

सिंदूर एवं मंगलसूत्र:- वर वधू की मांग में सिंदूर भरता है तथा मंगलसूत्र पहनाता है, जो वैवाहिक जीवन का प्रतीक है। **सिंदूरदान मंत्र-** ॐ मंगल्यं तन्तुनानेन मम जीवन हेतुना। कण्ठे बध्नामि शुभगे त्वं जीव शरदः शतम्।। **अर्थ- मैं यह मंगलसूत्र तुम्हारे सुखी एवं दीर्घ वैवाहिक जीवन के लिए धारण कराता हूँ।**

- **आशीर्वाद:-** अंत में वर-वधू को परिवार और समाज द्वारा सुखी वैवाहिक जीवन का आशीर्वाद दिया जाता है।
- **आशीर्वाद मंत्र-** सौभाग्यवती भव।
  अखण्ड सौभाग्यं भवतु।
  आयुष्मान् भव।। अर्थ- तुम्हारा वैवाहिक जीवन सुखी, समृद्ध और दीर्घायु हो।

2.6 विवाह संस्कार का महत्व

सनातनी धर्मशास्त्रों में विवाह संस्कार को बहुत महत्वपूर्ण मना जाता है ;चूँकि यहीं से गृहस्थ आश्रम की शुरुआत होइती है , साथ ही इसके अनेक प्रकार के महत्व भी विद्वानों ने कहे हैं जो कि इस प्रकार है -

1. सामाजिक महत्व- विवाह समाज की मूल इकाई परिवार की स्थापना करता है। इससे सामाजिक व्यवस्था बनी रहती है । साथ ही यह जीव को अनुशासित और दायित्ववान , व्यवहारिक गुणों का भी विकास करता है एक समाज का नित्र्माण भी परिवार से ही शुरू होता है |

2. धार्मिक महत्व- हिंदू धर्म में विवाह को धार्मिक कर्तव्य माना गया है। कई धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं माने जाते।

3. नैतिक महत्व- विवाह व्यक्ति को जिम्मेदारी, अनुशासन और मर्यादा का पालन करना सिखाता है।

4. पारिवारिक महत्व- विवाह से परिवार का निर्माण होता है और वंश परंपरा आगे बढ़ती है।

5. मानसिक एवं भावनात्मक महत्व- पति-पत्नी एक-दूसरे के जीवन में प्रेम, विश्वास और सहयोग का आधार बनते हैं।

हिंदू विवाह के प्रकार- धर्मशास्त्रों में विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं:

1. ब्रह्म विवाह
2. दैव विवाह
3. आर्ष विवाह
4. प्राजापत्य विवाह
5. गंधर्व विवाह
6. असुर विवाह
7. राक्षस विवाह
8. पैशाच विवाह

इनमें ब्रह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

2.7 वोधातामक प्रश्न

विवाह संस्कार हिंदू धर्म में क्या माना जाता है?

(A) केवल सामाजिक प्रथा
(B) धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार
(C) व्यापारिक समझौता
(D) राजनीतिक व्यवस्था

2. विवाह संस्कार का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(A) धन अर्जन
(B) मनोरंजन
(C) गृहस्थ जीवन की स्थापना
(D) युद्ध प्रशिक्षण

3. विवाह संस्कार के बाद व्यक्ति किस आश्रम में प्रवेश करता है?

(A) ब्रह्मचर्य आश्रम
(B) वानप्रस्थ आश्रम
(C) संन्यास आश्रम
(D) गृहस्थ आश्रम

4. विवाह में सबसे पहले किस देवता की पूजा की जाती है?

(A) शिव
(B) विष्णु
(C) गणेश
(D) सूर्य

5. कन्यादान किसके द्वारा किया जाता है?

(A) वर द्वारा
(B) गुरु द्वारा
(C) कन्या के माता-पिता द्वारा
(D) पुरोहित द्वारा

6. विवाह में अग्नि को किस रूप में माना जाता है?

(A) मित्र
(B) साक्षी

(C) गुरु
(D) अतिथि

7. सप्तपदी में कितने फेरे लिए जाते हैं?

(A) तीन
(B) पाँच
(C) सात
(D) नौ

8. वरमाला का क्या अर्थ है?

(A) युद्ध का आरंभ
(B) एक-दूसरे को स्वीकार करना
(C) पूजा करना
(D) आशीर्वाद देना

9. पाणिग्रहण संस्कार में क्या होता है?

(A) वर-वधू भोजन करते हैं
(B) वर वधू का हाथ पकड़ता है
(C) हवन किया जाता है
(D) गीत गाए जाते हैं

10. सिंदूरदान किसका प्रतीक है?

(A) शिक्षा
(B) युद्ध
(C) वैवाहिक जीवन
(D) व्यापार

2.8 आधुनिक संदर्भ में विवाह संस्कार

आज के समय में विवाह की परंपराओं में परिवर्तन आया है, लेकिन इसका महत्व आज भी बना हुआ है। आधुनिक समाज में विवाह:

- प्रेम, समानता और सम्मान पर आधारित माना जाता है।

- पति-पत्नी दोनों की समान भागीदारी को महत्व दिया जाता है।
- दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों का विरोध किया जाता है।

आज विवाह केवल सामाजिक बंधन ही नहीं, बल्कि पारस्परिक समझ और सहयोग का संबंध भी माना जाता है।

2.9 सारांश

प्रिय अध्येताओ आपने इस इकाई के अन्तरगत विवाह संस्कार के विषय में गहनता से पडा कि विवाह संस्कार क्या है , विवाह संस्कार का महत्व और उपयोगिता क्या है ,विवाह में क्या-क्या विधि-विधानों की आवश्यकता होती है , सभी विषयों का समग्र रूप से अध्ययन किया | विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र संस्कार है। यह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्कि जीवनभर साथ निभाने का संकल्प है। विवाह व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिक समय में भी विवाह संस्कार के आदर्श — प्रेम, विश्वास, सहयोग, जिम्मेदारी और मर्यादा — समाज के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

2.11 वोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. **C**
2. **B**
3. **C**
4. **D**
5. **C**
6. **B**
7. **C**
8. **B**
9. **B**
10. **C**

2.11 संदर्भित पाठ्य सामग्री

1. कर्मकाण्ड समुच्च्य

2. कर्मकाण्ड प्रदीप[

3.शान्ति और संस्कार

4. ग्रहशांति पद्वति

5.पूजा प्रकाश

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.विवाह संस्कार का परिचय दीजिए |

2. कन्यादान के विषय में विस्तार पूर्वक लिखिए |

इकाई- 3 विवाह के प्रकार

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विवाह का अर्थ परिचय एवं स्वरुप

3.4 विवाह के प्रकार

3.5 ब्रह्म विवाह, देव विवाह, आर्ष विवाह, विचार

3.6 प्रजापत्य विवाह, गान्धर्व विवाह, आसुर विवाह, राक्षस विवाह, विचार

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

3.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी.ए.के.एन (23)में हम सभी संस्कार के महत्व के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। इस इकाई के अंतर्गत हम सभी संस्कार क्या हैं? इसकी जीवन मैं क्या उपयोगिता हैं। इस बारे मैं अध्ययन करेंगे। आइए जानते हैं कि संस्कार क्या है। संस्कार वह अमूल्य धरोहर हैं, जिसके द्वारा हमारा जीवन कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता बिना संस्कार तथा संस्कृति के हमारा यानि मनुष्य मात्र का जीवन अधूरा प्रतीत होता हैं। जो परिमार्जन करें जीवन को सत्मार्ग की औरले जाये जो पाप कर्मो से हमें बचाकर सत्कर्मों की और ले जाकर जीवन मैं श्रेष्ठता की और अग्रसर करता हुआ जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कराता हुआ लौकिक जगत से भी ऊपर उठकर पारलौकिकता की और ले जायें वह संस्कार कहलाता हैं। संस्कार से ही संस्कृति की और बढ़ा जा सकता हैं। जिससे हमारी संस्कृति सुरक्षित रहकर जनमानस का कल्याण करती रहें वह संस्कार हैं। हमारे सम्पूर्ण रंग रंग मैं संस्कार विद्यमान हैं परन्तु थोड़ा कोशिश करके उसको जानना होगा। और भी विषयों का समावेश इस ईकाई के अंतर्गत किया गया हैं। षोडश संस्कार के अंतर्गत सर्वप्रथम गर्भाधान किया जाता हैं। इस संस्कार को लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है। जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाने वाला संस्कार कहलाता हैं । उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः आते हैं। इस इकाई में आप सभी षोडश संस्कारों का परिचय, विभिन्न आचार्यो के अनुसार संस्कार मुहूर्त, इत्यादि विषयों के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन करनेके पश्चात् आप-

- ❖ संस्कार क्या हैं? इस विषय को समझ सकेंगे।
- ❖ विवाह संस्कार के बारे मै समझ सकेंगे ।
- ❖ विवाह के कितने प्रकार है इस विषय से अवगत हो सकेंगे l

- ❖ ब्रह्म विवाह, देव विवाह, इस विषय को समझ सकेंगे।
- ❖ प्रजापत्य विवाह, गान्धर्व विवाह, आसुर विवाह, इस विषय से अवगत होंगे।

3.3 विवाह संस्कार का परिचय एवं स्वरुप

भारतीय सनातन संस्कृति में विवाह संस्कार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। मनुष्य के जीवन को पवित्र और अनुशासित बनाने के लिए सोलह संस्कार का अनुसरण करना महत्वपूर्ण माना जाता हैं।षोडश संस्कार के अन्तर्गत विवाह संस्कार को 15 संस्कार के रूप मै स्वीकार किया गया है।जिनमें विवाह संस्कार को प्रमुख माना गया है। विवाह केवल स्त्री और पुरुष का सामाजिक संबंध नहीं, बल्कि एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक बंधन का पवित्र स्थान हैं। इसके माध्यम से दो व्यक्तियों के साथ-साथ दो परिवारों का भी मिलन होना विवाह संस्कार को जन्म-जन्मांतर का पवित्र संबंध माना गया है।धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह का उद्देश्य केवल संतान उत्पत्ति ही नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति भी मानी जाती हैं। पति और पत्नी गृहस्थ जीवन में एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं। गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आधार के साथ साथ सर्वश्रेष्ठ भी कहा गया है।ऋग्वेदमें विवाह केमहत्व का वर्णन किया गया हैं।

“सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥”

विवाहशब्द का अर्थ सामान्य रूप से सम्यक् रूप से वहन करना यानि पुरूष स्त्री का विधिपूर्वक पालन पोषण के साथ साथ एक दूसरे का वहन करता हैं। विवाह संस्कार हेतु अन्य विभिन्न शब्दों का प्रयोग भी होता है, जैसे उद्वाह, पाणिग्रहण, परिणय्, कन्यादान आदि। विवाह स्त्री तथा पुरुष के मध्य एक स्थायी सम्बन्ध होता हैं। जिसका उद्देश्य सन्तानोपत्ति के साथ साथ जीवन व गृहस्थाश्रम को स्थायित्व प्रदान करना भीहोता हैं। यह अन्य तीनों आश्रमों का आधार भी है। मनस्मृति मै कहा गया है जिसप्रकार समस्त जन्तु जीवन हेतु वायु पर आश्रित हैं, उसीप्रकार समस्त आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। अतः गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इहलोक तथा स्वर्ग में सुखाभिलाषी व्यक्तियों को गृहस्थाश्रम का पालन करना आवश्यक होता है।विवाह संस्कार का स्वरूप धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक तीनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण होता हैं। धार्मिक दृष्टि से यह एक पवित्र यज्ञ माना जाता है, जिसमें अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधू सात फेरे लेने के साथ साथ

सात वचन लेने का संकल्प भी करते हैं। संकल्प करते हैं। सामाजिक दृष्टि से विवाह परिवार और समाज की स्थिरता बनाए रखता है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥"

जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं।विवाह संस्कार भारतीय समाज की मर्यादा, संस्कृति और नैतिक मूल्यों का प्रतीक माना गया है। विवाह संस्कार केवल सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक कर्तव्य भी है जो विवाह के माध्यम से स्त्री और पुरुष गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षइन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त होता हैं ऋग्वेदमें विवाह की पवित्रता का वर्णन करते हुए कहा गया है

"सखा सप्तपदा भव।"

सप्तपदी के द्वारा पति-पत्नी जीवनभर के मित्र बन जाते हैं। यह मंत्र पति-पत्नी के प्रेम, विश्वास और सहयोग का प्रतीक है माना जाता हैं।

"अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥"

अर्थात् संतान प्राप्ति, धर्मकर्म, सेवा और श्रेष्ठ दांपत्य सुख पत्नी के द्वारा ही संभव है।

विवाह संस्कार का स्वरूप अत्यंत धार्मिक है। विवाह में अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधू प्रतिज्ञाएँ करते हैं। अग्नि पवित्रता और सत्य का प्रतीक मानी जाती है। सप्तपदी के सात फेरे विवाह का सबसे महत्वपूर्ण भाग हैं। प्रत्येक फेरे में पति-पत्नी जीवन के कर्तव्यों को निभाने का संकल्प लेते हैं।यजुर्वेदमें कहा गया है-

"हृदयं ते ददामि, हृदयं मम।"

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं, बल्कि दो परिवारों का भी मिलन माना जाता है। कन्यादान को महानदान भी कहा गया गया हैं। महाभारतमें कहा गया हैं।

"गृहस्थाश्रममाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।"

अर्थात् सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम पर निर्भर रहते हैं।

विवाह संस्कार का सामाजिक महत्व भी अत्यंत व्यापक है। यह समाज में मर्यादा, अनुशासन और नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है। पति-पत्नी एक-दूसरे के सुख-दुःख के सहभागी बनते हैं और परिवार की उन्नति में इनकी भूमिका रहती हैं। भारतीय परंपरा में नारी को गृहलक्ष्मी का स्वरुप भी माना गया है।पुराणों में भी विवाह संस्कार का अत्यंत महत्व बताया गया है।गरुड़ पुराणमें कहा गया है कि धर्मपूर्वक विवाह करने वाला मनुष्य गृहस्थ जीवन में सुख और पुण्य को प्राप्त करता हैं।

"धर्मेण विवाहः कार्यः कुलस्य च विवृद्धये।"

विष्णु पुराणमें पत्नी को पति की "अर्धांगिनी" भी कहा गया हैं।

"अर्धो भार्या मनुष्यस्य।"

पत्नी पुरुष का आधा अंग यानि अर्धागनी मानी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिना पत्नी के पुरुष विना पत्नी के पुरुष अधूरा माना जाता हैं।शिव पुराणमें वर्णन किया गया है की भगवान शिव और माता पार्वती के विवाह का वर्णन आदर्श दांपत्य जीवन के रूप में दर्शाया गया है। उनका विवाह प्रेम, त्याग, समर्पण और तपस्या का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकाररामायणमें भगवान राम और माता सीता का विवाह मर्यादा और आदर्श गृहस्थ जीवन का उदाहरण भी प्रस्तुत करता हैं।विवाह संस्कार को शास्त्रों मै गृहस्थाश्रम का द्वार भी कहा गया हैं। यह संस्कार परम्परा में इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रायः गृहसूत्रों में संस्कारविषयक प्रकरण का आरम्भ ही इसी से होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यारम्भ के बाद समावर्तन संस्कार के पश्चात् पुनः सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होती हैं।विवाह संस्कार समस्त गृहयज्ञों का आधार है। गृहस्थाश्रम समाज का आधार होने के कारण विवाह संस्कार द्वारा ही अन्य संस्कारों का मार्ग भी प्रशस्त करता हुआ आगे बढ़ता हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि जो व्यक्ति विवाह द्वारा गहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करता वह अयज्ञिय (यज्ञहीन) माना जाता हैं।अयज्ञिय वा एष योऽपत्नीकः वैदिक काल में ही विवाह संस्कार अपने संस्थागत रूप को प्राप्त हो चुका था। भारतीय जीकर आश्रम धर्म के द्वारा विवाह। इसप्रकार विवाह के सभी प्रकार उसमें कन्या की प्राप्ति किमप्रकार होती है उस प्रक्रिया पर आधारित हैं। हिन्दु परम्परा में प्राम विवाह का चाहे कोई भी प्रकार हो उसकी वैधता हेतु विवाह-संस्कार के धार्मिक विधि-विधानों व कर्मकाण्डों का पालन अनिवार्य था। इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क्यस्मृति का वचन है कि- नोदकेन विना चार्य कन्याया पतिरुच्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे। पुरुष के एक बार संयुक्त होने पर वैवाहिक

विधि-विधान व संस्कार उस सम्बन्ध को मामाजिक स्वीकार्यता के साथ-साथ स्थायित्व भी प्रदान करते हैं। अतः विवाह के प्रत्येक प्रकार में धार्मिक वैवाहिक अनुष्ठानों का पालन अपरिहार्य है इससे वैवाहिक सम्बन्ध को पारिवारिक, सामाजिक स्वीकृति व पवित्रता भी प्राप्त होती है। विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति के साथ ही पारिवारिकसामाजिक स्वीकृत व दाम्पत्य को स्थायित्व प्रदान करना भी होता हैं।

3.4 विवाह के प्रकार -

मुख्य रूप से आठ प्रकार के विवाह का वर्णन शास्त्रों मै प्राप्त होता है जो आगे दिया जा रहा हैं जिसका अलग अलग स्वरुप या उद्देश्य के माध्यम से विवाह का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता हैं।

ब्रह्म विवाह,

देव विवाह

आर्ष विवाह विचार

प्रजापत्य विवाह,

गान्धर्व विवाह,

आसुर विवाह,

राक्षस विवाह विचार

पैशाच विवाह

इन आठ प्रकार के विवाह मै सबसे शुद्ध एवं पवित्र ब्रह्म विवाह का माना जाता हैं। जो शास्त्रों के अनुसार विधिपूर्वक किया जाता हैं।

3.5 ब्रह्म विवाह, देव विवाह, आर्ष विवाह विचार

ब्रह्म विवाह-

भारतीय शास्त्रों मै ब्राह्मविवाह को सबसे सबसे पवित्र विवाह कहा गया हैं,इए ब्राह्म विवाह इसलिये कहते हैं क्योंकि यह ब्राह्मणों के योग्य समझा जाने वाला विवाह था। इस विवाह मै पिता द्वारा विद्वान् तथा शीलसम्पन्न वर को स्वयं आमन्त्रित कर उसका वैदिक मंत्रो के द्वारा विधिवत् संस्कार किया जाता था वधू के पिता स्वयं वर का चुनाव कर अपने पुत्री के लिए यथा योग्य वर के साथ कविना शुल्क आदि न स्वीकार कर, दक्षिणा के साथ यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का महा संकल्प के द्वारा दान किया जाता था, इसलिये ऐसे पवित्र विवाह को ब्रह्मविवाह कहा जाता हैंlमनुस्मृति3.10 मै कहा गया हैं

आच्छाय चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।

आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥

आश्वलायन के अनुसार ब्रह्म विवाह के लिए अलंकृत कन्या को संकल्प कर विधिपूर्वक दान देने को ब्राह्म विवाह कहते हैं। यहाँ पर यह वर्णन किया गया है की इससे उत्पन्न पुत्र बारह पीढ़ी पहले व बारह पीढ़ी बाद के पितरों का उद्धार करता हैंl

देव विवाह-

दूसरे नम्बर पर दैव विवाह के बारे मै कहा गया है कि यह विवाह आर्ष विवाह की अपेक्षा श्रेष्ठ विवाह माना गया हैंlइस देवविवाह के अन्तर्गत पिता अपनी कन्या को अलंकृत करके अपने द्वारा किये जा रहे यज्ञ के ऋत्विज को दे देता था ऐसा शास्त्र सम्मत माना जाता हैंl आगे प्रमाण सहित वर्णन किया गया हैंlआश्वालायन गृह्यसूत्र, 1.6

ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलङ्कृत्य स दैवः।

दक्षिणासु दीयमानास्वन्तर्वेदि यदृत्विजे स दैवः। बौधायन गृह्यसूत्र, 11

वेद के इस मन्त्र मै कहा गया है कि इसमें कन्या दक्षिणा के रूप में वर को दी जाती थी इस प्रकार के विवाह को 'दैव विवाह' इसलिये कहते थे क्योंकि यह देवताओं हेतु किये जाने वाले यज्ञ के समय सम्पन्न होता था। मनु कहते हैं कि यज्ञ में सम्यक् रूप से कर्म करते हुये ऋत्विज्ञ को अलंकार आदि से युक्त कन्या का दान करना दैव विवाह कहलाता था। मनुस्मृति, 3/28

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।

अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।

आर्ष विवाह विचार

इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता वर से यज्ञादि धर्मकार्यों को सम्पन्न करने के लिये एक अथवा दो जोड़ी गाय प्राप्त करने का संकल्प करता हुआ वर कन्या के पिता को गाय देकर इस विवाह को सम्पन्न किया जाता था। आश्वालायन, बौधायन तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों का कथन है कि जब कोई युवक कन्या के पिता को एक जोड़ी गाय प्रदान कर कन्या से विवाह करता है तो वह विवाह आर्ष विवाह कहलाता है।गोमिथुनं दत्त्वोपयच्छेत स आर्षः। मनुस्मृति के अनुसार भी वर से एक या दो जोड़ी गाय लेकर पिता द्वारा विधिवत् कन्या प्रदान करना आर्ष विवाह कहलाता है।एक गोमिथुनं द्वे वा, वराददाय धर्मतः

3.6 प्रजापत्य विवाह, गान्धर्व विवाह, आसुर विवाह, राक्षस विवाह विचार

प्राजापत्य विवाह

इस विवाह के अन्तर्गत पिता द्वारा कन्या का पाणिग्रहण योग्य वर के साथ किया जाता था। जिसमें वर-कन्या दोनों अपने नागरिक व धार्मिक कर्तव्यों का साथ-साथ पालन करते हैं। शास्त्रों मै प्राजापत्य विवाह शुद्ध धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पादित होता था। इसलिये प्रजापत्य विवाह को आर्ष विवाह से श्रेष्ठ माना जाता हैं।यह यह भी वर्णन किया गया है कि प्राजापत्य विवाह में स्त्री और पुरुष दोनों साथ-साथ धर्म का आचरण करेंगे इस प्रकार विचारों का सामंजस होने पर कन्या, वर को प्रदान की जाती थी।आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/4/25 'सह धर्म चरतम्' इति प्राजापत्यः। गौतम और मनु के अनुसार।

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च। कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।

'प्रजापति' नाम से ही यह ज्ञात होता है कि इस विवाह के माध्यम से वर- वधू प्रजापति के प्रति अपना ऋण चुकाते थे तथा सन्तानोत्पत्ति व उसके पालन-पोषण हेतु इस बन्धन में बँधते थे। इसमें पति और पत्नी दोनों के अधिकार समान रूप से सुरक्षित रहते थे। जिससे प्रजा या घर पर विधिपूर्वक इस विवाह को किया जाता था।

गान्धर्व विवाह-आठ प्रकार के विवाह मै गान्धर्व विवाह का प्रचलन प्रचीन काल से रहा हैं जिसे प्रेम विवाह कहा जाता हैं।गान्धर्व विवाह प्राचीन भारतीय विवाह-प्रथाओं में एक महत्वपूर्ण प्रकार माना गया है। यह विवाह स्त्री और पुरुष की आपसी प्रेम के माध्यम से होता है। जिसे प्रेम विवाह भी कहा जाता हैं दोनों पक्षों से सहमत होने से यह विवाह किया जाता था। इस विवाह मै माता-पिता या समाज की अनुमति आवश्यक नहीं मानी जाती थी। जब युवक और युवती एक-दूसरे को पसंद करके स्वयं विवाह-संबंध स्वीकार कर लेते थे, तब उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता था।प्राचीन ग्रंथों में इसे प्रेम-विवाह का रूप माना गया है। विशेषकर क्षत्रिय वर्ग में यह विवाह अधिक प्रचलित था।मनुस्मृतितथा अन्य धर्मशास्त्रों में गान्धर्व विवाह का उल्लेख मिलता है। महाभारत मेंशकुंतलाऔरदुष्यंतका विवाह इसका प्रसिद्ध उदाहरण देखा जाता हैं।

आसुर विवाह

शास्त्रों मै आसुर विवाह को गन्धर्व विवाह की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता हैं। असुर विवाह में वर कन्या तथा उसके सम्बन्धियों को यथाशक्ति धन देकर कन्या से विवाह किया जाता था परन्तु यह विवाह शास्त्र सम्मत नही माना जाता हैं, इस प्रकार का विवाह जीवन को हमेशा कष्ट देने वाला होता हैं। मनुस्मृति3.31

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै शक्तितः ।

कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।।

धनेनोपतोष्योपयच्छेत स आसुरः ।

याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार आसुरो द्रविणादानात् ।

इस विवाह में धन की प्रधानता है अतः यह एक प्रकार से क्रय-विक्रय जैसा है। जिसप्रकार से वर्तमान में लोग दहेज के बिना विवाह को अपमानजनक व प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं वैसे ही प्राचीन काल में कन्याशुल्क लेना प्रतिष्ठा का विषय समझा जाता था।आसुर विवाह का उल्लेख ऋग्वेद, बौद्धग्रन्थों आदि में प्राप्त होता था। ग्रंथो मै इस प्रकार के विवाह का वर्णन प्राप्त होता हैं।रामायण में कैकेयी के विवाह के समय शुल्क लेने का वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत में भी गान्धारी और माद्री के विवाह के लिये भीष्म ने मद्रराज को प्रचुर धन देकर इस विवाह का कराया था। षोडश संस्कारो मै विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन अलग अलग प्रकार से हुआ था।

राक्षस विवाह-

इस विवाह मै बलपूर्वक शक्ति के बल पर कन्या से विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता हैं। क्षत्रियवर्ग व राजाओं आदि के मध्य प्रचलित होंने का कारण इस विवाह को 'क्षात्र विवाह' के नाम से भी जाना जाता हैं।रोती हुई कन्या का, उसके सम्बन्धियों को मारकर अथवा क्षत-विक्षतकर बलपूर्वक हरणकर विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता हैं।मनुस्मृति, 3.33

हत्वा छत्वा भित्त्वा व कोशन्ती रुदती गृहात्। प्रसा कन्याहरतो राक्षसो विधिरुच्यते॥

पैशाच विवाह-

आठ विवाह मै पैशाच विवाह के अन्तर्गत वर छल-कपट द्वारा कन्या पर अधिकार प्राप्त करता था। इस विवाह को सर्वाधिक अप्रशस्त माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार सोती हुती, मतवाली या संज्ञाहीन कन्या के साथ जब कोई पुरुष छल से एकान्त में उसका उपभोग करता है उसे पैशाच विवाह कहते हैं।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।

स पापिष्ठौ विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

सुप्तानां प्रमत्तानां वापहरेत् स पैशाचः।

याज्ञवल्क्यस्मृति का कथन है कि जब छल-छद्य से कन्या का हरण किया जाय तो वह पैशाच विवाह कहलाता हैं।पैशाचः कन्यकाछलात्। स्मृतियों ने भी विवाह के इस प्रकार को स्वीकार किया तथा वैध माना है कि उसमें उनकी इच्छा दिखायी पड़ती है। आपस्तम्ब व वशिष्ठ ने विवाह के प्रकारों में पैशाच विवाह को स्थान देना आवश्यक नहीं माना हैं।मनुस्मृति मै पैशाच व राक्षस विवाह को विवाह के प्रकारों में परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने छल से अथवा बलात् कन्याहरण द्वारा स्त्री प्राप्त कर उससे विवाह किया जाता था।

नचेच्छा संयोगमात्र विवाहःस्वीकरणोपायभेदादष्टौ विवाहाः न पुनर्विवाहभेदात्।

3.7 सारांश

आप सभी ने बीए.के ए एन 23 नामक इकाई मैं विवाह संस्कार के प्रकारों का भलीभांति अध्ययन कर लिया होगा। इस इकाई मैं विवाह संस्कार का परिचय, स्वरुप तथा महत्व पर प्रकाश डाला गया हैं कि मनुष्य जीवन को विवाह संस्कार के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता हैं जो पवित्र मार्ग तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति कराता हैं। जिसके द्वारा हमारा जीवन धन्य हो जाता हैं। इस इकाई का उद्देश्य हैं कि भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों मैं आठ प्रकार के विवाहों मैं ब्रह्म विवाह, देव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, गांधर्व विवाह, आसुर विवाह, राक्षस विवाह, इत्यादि का उल्लेख किया गया हैं।, यह पवित्र विवाह के रूप मैं जाना जाता हैं। द्वितीय स्थान पर देव विवाह को श्रेष्ठ माना जाता हैं। आर्ष विवाह के अन्तर्गत कन्या के पिताजी वर कन्या के पिता को गाय देकर इस विवाह को सम्पन्न किया जाता था1 जिसमें वर-कन्या दोनों अपने नागरिक व धार्मिक कर्तव्यों का साथ-साथ पालन करते हैं। शास्त्रों मै प्राजापत्य विवाह शुद्ध धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पादित होता था1 जब युवक और युवती एक-दूसरे को पसंद करके स्वयं विवाह-संबंध स्वीकार कर लेते थे, तब उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता था।असुर विवाह में वर कन्या तथा उसके सम्बन्धियों को यथाशक्ति धन देकर कन्या से विवाह किया जाता थाबलपूर्वक शक्ति के बल पर कन्या से विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता हैं।यहा पर छल-कपट द्वारा कन्या पर अधिकार प्राप्त करने को पैशाच विवाह कहा जाता हैं1 विवाह के प्रकार के बारे मै सभी तरह से आप सभी ने इस बारे अध्ययन कर लिया होगा 1

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. संस्कार– जीवन को पवित्र बनाने की प्रक्रिया।
2. विवाह संस्कार – स्त्री-पुरुष का धार्मिक बंधन।
3. षोडश संस्कार – 16 संस्कार।
4. गृहस्थाश्रम– पारिवारिक जीवन का आश्रम।
5. पाणिग्रहण–विवाह में हाथ ग्रहण करना।
6. सप्तपदी–विवाह के सात फेरे।
7. कन्यादान – कन्या का वर को दान।
8. ब्राह्म विवाह – योग्य वर को कन्या देना।
9. दैव विवाह– ऋत्विज को कन्या देना।
10. आर्ष विवाह– गौ देकर किया गया विवाह।
11. प्राजापत्य विवाह – धर्मपालन हेतु विवाह।

12. गान्धर्व विवाह –प्रेम विवाह।
13. आसुर विवाह– धन देकर किया गया विवाह।
14. राक्षस विवाह –बलपूर्वक विवाह।
15. पैशाच विवाह – छलपूर्वक विवाह।
16. ऋत्विज –यज्ञ करने वाला पुरोहित।
17. अर्धांगिनी –पत्नी का सम्मानसूचक नाम।
18. धर्मशास्त्र–धर्म सम्बन्धी ग्रंथ।
19. यज्ञ –वैदिक पूजा कर्म।
20. पुरुषार्थ– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कार का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. विवाह संस्कार का क्या महत्व है?
3. षोडश संस्कारों में विवाह संस्कार का स्थान बताइए।
4. विवाह शब्द का अर्थ लिखिए।
5. गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ क्यों माना गया है?
6. सप्तपदी का क्या महत्व है?
7. कन्यादान से क्या अभिप्राय है?
8. ब्रह्म विवाह किसे कहते हैं?
9. दैव विवाह का वर्णन कीजिए।
10. आर्ष विवाह क्या है?
11. प्राजापत्य विवाह का अर्थ बताइए।
12. गान्धर्व विवाह किस प्रकार का विवाह है?
13. आसुर विवाह की विशेषताएँ लिखिए।
14. राक्षस विवाह किसे कहा जाता है?
15. पैशाच विवाह का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
16. विवाह संस्कार का धार्मिक महत्व बताइए।
17. विवाह संस्कार का सामाजिक महत्व लिखिए।
18. हिन्दू धर्म में विवाह के कितने प्रकार बताए गए हैं?
19. "सखा सप्तपदा भव" मंत्र का अर्थ लिखिए।
20. पत्नी को "अर्धांगिनी"क्योंकहागयाहै?

3.10 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

1. जीवन को शुद्ध और श्रेष्ठ बनाने वाली प्रक्रिया।
2. दो व्यक्तियों और दो परिवारों का पवित्र बंधन।
3. 15वाँ संस्कार।
4. स्त्री और पुरुष का विधिपूर्वक मिलन।
5. यह सभी आश्रमों का आधार है।
6. जीवनभर साथ निभाने का संकल्प।
7. कन्या को योग्य वर को सौंपना।
8. योग्य वर को बिना शुल्क कन्या का दान।
9. ऋत्विज को कन्या का दान।
10. गाय लेकर सम्पन्न किया गया विवाह।
11. धर्म पालन के उपदेश सहित किया गया विवाह।
12. प्रेम और सहमति से किया गया विवाह।
13. धन देकर किया गया विवाह।
14. बलपूर्वक कन्या का हरण कर विवाह करना।
15. छलपूर्वक संबंध स्थापित करना।
16. अग्नि को साक्षी मानकर प्रतिज्ञा लेना।
17. समाज और परिवार को स्थिरता प्रदान करना।
18. आठ प्रकार।
19. सात कदम साथ चलने से मित्रता स्थापित होती है।
20. पत्नी को पति का आधा अंग माना गया है।

3.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची -

मुहूर्त चिंतामणि
षोडश संस्कार प्रकाश
संस्कार विमर्श
विवाह पद्धति

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्कार का अर्थ एवं महत्व बताते हुए विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए?
2. विवाह संस्कार का परिचय एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए?
3. ब्रह्म विवाह, देव विवाह तथा आर्ष विवाह का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?
4. प्राजापत्य विवाह, गान्धर्व विवाह तथा आसुर विवाह पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 4 गुरु शुद्धि-वर-कन्या वरण तथा गुण दोष विचार

इकाई की संरचना –

5.1 प्रस्तावना
5.2उद्देश्य
5.3 गुरु शुद्धि विचार
5.4 वर-कन्या वरण
5.5 गुण दोष विचार
5.6 सारांश
5.7बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र में विवाह को केवल सामाजिक या कानूनी बंधन नहीं, बल्कि धर्म, संस्कार और जीवन की स्थिरता का प्रतीक माना गया है। इस संदर्भ में गुरु ग्रह (बृहस्पति) का अत्यधिक महत्व है। गुरु को धर्म, ज्ञान, सदाचार, दांपत्य सुख और संतान का कारक ग्रह माना गया है। स्त्री कुंडली में बलवान और शुभ गुरु योग्य पति की प्राप्ति का संकेत देता है, जबकि पुरुष की कुंडली में गुरु शुभ हो, तो वह धर्मपरायण और जिम्मेदार जीवनसाथी होता है। विवाह मुहूर्त में गुरु की शुद्ध और मार्गी स्थिति आवश्यक मानी गई है; यदि गुरु अस्त, बाल या वक्री अवस्था में हो तो विवाह अशुभ माना जाता है। इसके अतिरिक्त विवाह मुहूर्त का निर्धारण तिथि, वार, नक्षत्र, मास, लग्न, योग, करण और विशेष दोषों के परिहार के आधार पर किया जाता है। विवाह में गोधूलि लग्न को भी विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि इस समय अधिकांश दोष अपने प्रभाव में नहीं रहते। आचार्यों ने विवाह में वर-कन्या का जन्मांग, नक्षत्र, राशि और विशेष दशा के अनुसार दोष और उनके परिहार की विस्तृत प्रणाली बताई है। प्रमुख दस दोष-लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाणपंचक-, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य और दग्धा तिथिको निवारण के बिना विवाह करना अशुभ माना गया है।

5.2उद्देश्य

- ❖ विवाह में गुरु ग्रह के महत्व को समझ सकेंगें।
- ❖ वर-कन्या के वरण मुहूर्त के जान पायेंगे।
- ❖ विवाह के गुण दोषों को समझ पायेंगे।
- ❖ विवाह के अन्य शुभाशुभ विचार को जान पायेंगे।

5.3 गुरु शुद्धि विचार

विवाह में गुरु ग्रह का उपादेयता- ज्योतिष शास्त्र मेंगुरु ग्रह (बृहस्पति)को अत्यंत शुभ और कल्याणकारी ग्रह माना गया है। विवाह जैसे पवित्र और जीवनभर के संस्कार में गुरु का विशेष महत्व है, क्योंकि गुरु कोधर्म, ज्ञान, सदाचार, संतान और दांपत्य सुखका कारक ग्रह माना गया है। शास्त्रों के अनुसार गुरु की अनुकूल स्थिति विवाह को स्थिर, सुखद और सफल बनाती है।गुरु ग्रह कोपति कारक (विशेष रूप से स्त्री कुंडली में) माना जाता है। यदि स्त्री की कुंडली में गुरु बलवान, शुभ राशि में और शुभ भाव में स्थित हो, तो उसे योग्य, संस्कारी और सहायक पति की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पुरुष की कुंडली में गुरु शुभ हो, तो वह धर्मपरायण, जिम्मेदार और पारिवारिक जीवन को निभाने वाला होता है।विवाह में गुरु का महत्व केवल कुंडली तक सीमित नहीं है, बल्किविवाह मुहूर्तमें भी गुरु-शुद्धि का विचार किया जाता है। यदि गुरु अस्त, बाल या वक्री अवस्था में हों, तो विवाह को अशुभ माना गया है। शुद्ध गुरु में किया गया विवाह दांपत्य जीवन में प्रेम, विश्वास और संतान सुख प्रदान करता है।गुरु सप्तम भाव, द्वितीय भाव और नवम भाव से विशेष रूप से संबंधित

माने जाते हैं। सप्तम भाव दांपत्य का, द्वितीय भाव परिवार का और नवम भाव धर्म का सूचक है। इन भावों पर गुरु की शुभ दृष्टि विवाह को स्थिरता और सम्मान देती है।यदि कुंडली में गुरु दुर्बल या पीड़ित हों, तो विवाह में विलंब, मतभेद, अहंकार या संतान संबंधी समस्याएँ देखी जा सकती हैं। ऐसे में गुरु को मजबूत करने के लिए दान, मंत्र जप और गुरु सेवा का विधान बताया गया है।इस प्रकार कहा जा सकता है किगुरु ग्रह विवाह का आधार स्तंभ है। गुरु के बिना विवाह केवल सामाजिक बंधन रह जाता है, जबकि बलवान गुरु विवाह को धर्मपूर्ण, सुखद और जीवन को सार्थक बनाने वाला संस्कार बनाता है।

गुरु-शुद्धि

विवाह के समय गुरु काअस्त, बाल, वक्री या पीड़ित अवस्था में न होना। जब गुरु इन दोषों से मुक्त हों, तब उन्हें शुद्ध माना जाता है और विवाह शुभ फलदायक होता है।

अस्ते गुरौ विवाहादि न कार्यं शुभमिष्यते ।
गुरुहीने यथा विद्या निष्फला परिकीर्तिता ॥

अर्थ:जब गुरु ग्रह अस्त अवस्था में होता है, तब विवाह जैसे शुभ कार्य नहीं करने चाहिए। गुरु को धर्म, ज्ञान, सदाचार और मंगल कार्यों का आधार माना गया है। जिस प्रकारगुरु (आचार्य) के बिना विद्या निष्फल मानी जाती है,उसी प्रकारअस्त गुरु की स्थिति में किया गया विवाह भी पूर्ण शुभ फल नहीं देता। अस्त गुरु होने पर दांपत्य जीवन में स्थिरता, सुख और सामंजस्य की कमी आ सकती है। इसलिए शास्त्रों में विवाह के समय गुरु की शुद्ध और बलवान स्थिति का विशेष महत्व बताया गया है।

वक्री-

वक्री गुरौ न कर्तव्यं विवाहं मुनिसत्तमैः ।
धर्मनाशो भवेत् तत्र दाम्पत्ये क्लेशकारकः ॥

अर्थ:जब गुरु ग्रह वक्री अवस्था में हो, तब विवाह नहीं करना चाहिए, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है। वक्री गुरु की स्थिति में गुरु का स्वाभाविक शुभ प्रभाव ठीक से कार्य नहीं करता। इसके कारण विवाह मेंधार्मिक मर्यादाओं की कमजोरी, आपसी समझ की कमी और कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा उत्पन्न हो सकती है। वक्री गुरु में किया गया विवाहदांपत्य जीवन में क्लेश, तनाव और मतभेद का कारणबन सकता है। इसलिए सुखी और स्थिर वैवाहिक जीवन के लिए गुरु का मार्गी और बलवान स्थिति में होना आवश्यक माना गया है।

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

5.4 वर-कन्या वरण

गोधूलि मुहूर्त-

गोधूलि काल ज्ञात करने के लिए सबसे उपयुक्त विधि यह है कि उस स्थान का पंचांग या स्थानीय पंचांग से सूर्यास्त काल देखकर उसमें १२ मिनट कम करने के पश्चात् जो समय आये, उसे लेकर सूर्यास्त से १२ मिनट आगे तक का कुल २४ मिनट का काल गोधूलि काल होता है। एक अन्य मत यह भी है कि सूर्यास्त से २४ मिनट पहले व सूर्यास्त के २४ मिनट बाद तक का २ घड़ी या ४८ मिनट का कुल समय 'गोधूलि काल' मानते हैं।

विवाह मुहूर्त के दिन का विचार उस स्थिति में ही किया जाता है जब क्रान्ति दोष उपस्थित न हो। इस प्रकार गोधूलि लग्न में ग्रहस्थिति लग्न का विचार करना युक्ति संगत नहीं है, वह भी उस स्थिति में जब शुद्ध विवाह मुहूर्त का दिन निर्धारित कर लिया गया हो। अतः कहा जा सकता है कि चन्द्रमा मंगल इत्यादि कहीं भी रहे तो भी हानि नहीं होती है। जैसाकि बताया गया है कि विवाह लग्न में सप्तम स्थान में जब किसी भी ग्रह की स्थिति अच्छी नहीं मानी गयी है, उस स्थिति में भी गोधूलि लग्न को ग्राह्य माना गया है, जबकि सूर्य सदा ही गोधूलि काल में सातवें स्थान में रहेगा।
परिणामस्वरूप गोधूलि काल में ग्रहयोगादि का विचार करना उपयुक्त नहीं होगा। केशवार्क ने ऐसा ही कहा है।

गोधूलिकेऽपि विधुमष्टमषष्ठ मूर्ति यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुवि प्रपंचः।
पंचांगशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्ये, यस्मादिदं सततमस्तगते पतंगे ।।

इस बात का समर्थन राजमार्त्तण्डादि ग्रन्थों में भी किया गया है। अतः विवाह मुहूर्त बनने पर गोधूलि काल का लग्न सदैव सबके लिए प्रशस्त कहा गया है।
गोधूलि-लग्न विचार

विवाह के लिए सबसे उत्तम लग्न गोधूलि लग्न ही होता है, गोधूलि लग्न में सभी दोषों का शमन हो जाता है, सिवाय कुलिक क्रान्ति साम्य व १,६,८ भावगत चन्द्रमा इन पाँच स्थितियों का ही शमन नहीं हो पाता है।

कुलिक क्रान्तिसाम्यं च मूर्तीषष्ठाष्टमः शशी। पंच गोधूलिके त्याज्या अन्य दोषाः शुभावहाः।।

यहाँ पर यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि गोधूलि लग्न का उपयोग उसी स्थिति में करना चाहिए जब शुद्ध लग्न न मिल पा रहा हो। शुद्ध लग्न उपलब्ध हो और उसका त्याग करके गोधूलि लग्न लेना

विशेष उपयुक्त नहीं होता है। बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के बाद का व शनिवार को सूर्यास्त से पहले का समय छोड़कर लग्न लेने से कुलिक दोष का भी बचाव हो जाता है।

वर वरण मुहूर्त्त -

वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्यतः ।
ध्रुवभे कृतिका पूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे ।।
उपवीतं फलं पुष्पं वसांसि विविधानि च ।
देयं वराय वरणे कन्याभ्राता द्विजेन वा ।।

शुभ मुहूर्त में गीत वाद्य से युक्त होकर ध्रुवसंज्ञक कृत्तिका, तीनों पूर्वा और विवाह में कहे हुए नक्षत्रों में, यज्ञोपवीत, फल- पुष्प तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न आदि से युक्त होकर कन्या का भाई या ब्राह्मण वर का वरण तिलक करना चाहिए।

कन्या वरण मुहूर्त्त -

पूर्वात्रय श्रवण मित्रभ वैश्वदे हौताशवासवसमीरणदैवतेषु ।
द्राक्षाफलेक्षु कुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम् ।।

तीनों पूर्व, श्रवण, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, स्वाति और विशाखा इन नक्षत्रों में पुष्प, ऋतुफल, अक्षतादि से पूर्ण अंजलिबद्ध होकर शान्ति पूर्वक कुमारी (कन्या) का वरण करना शुभ

5.5 गुण दोष विचार

१. ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म : वैवाहिक संत्रास की आशंका

ज्येष्ठ जातिका या ज्येष्ठ मास में किया गया विवाह 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' या द्विज्येष्ठ' विवाह कहलाता है। इस विवाह को मुहूर्तकारों ने मध्यम (सामान्य फल वाला-न अच्छा न बुरा) लिखा है। कुछ मुहूर्तकार तो इस 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' विवाह को मान्यता नहीं देते, वे इसका निषेध करते हैं। कुछ मुहूर्तकार का मत है कि कृतिका गत सूर्य के काल को छोड़कर शेष ज्येष्ठ मास में 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' का विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।

ज्येष्ठ जातक और ज्येष्ठ जातिका का परस्पर विवाह ज्येष्ठ मास में किया जाए तो उस विवाह को 'त्रिज्येष्ठ' विवाह कहा जाता है। त्रिज्येष्ठ विवाह की सभी मुहूर्तकारों ने निन्दा की है। कुछ दैवज्ञों का मत है कि कृतिकागत सूर्य के काल को छोड़कर ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ जातिका व ज्येष्ठ जातक का भी

परस्पर विवाह किया जा सकता है। लेकिन जहाँ तक हो सके, त्रिज्येष्ठ' विवाह से बचना ही चाहिए ऐसा अधिकांश आचार्यो का मत है।

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयो र्जन्ममासभतिथौ करग्रहः।
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद् द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ।।

ज्येष्ठ पुत्र या कन्या का जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि में विवाह उचित नहीं है। किन्तु यदि द्वितीय, तृतीय आदि, पुत्र या कन्या हो, तो दोष नहीं है।

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिस्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि
केचित्सूर्य वह्निगं प्रोज्झय चाहुनै वान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः।।

दो ज्येष्ठ मध्यम है, तीन ज्येष्ठ सर्वथा वर्जित हैं। किसी आचार्य के मत से कृतिकानक्षत्र के सूर्य को छोड़कर शेष भाग ज्येष्ठ मारा का शुभ है। ज्येष्ठ पुत्र तथा ज्येष्ठ कल्या का परस्पर विवाह नहीं होता है।

२. ज्येष्ठ संतान का विवाह ज्येष्ठ में नहीं -

जन्मज्यैष्ठ्यमथोदरे निपतनं रेतोनिषेकक्रमा-
द्यद्वक्त्रं प्रथमं तु पश्यति पिता स ज्येष्ठ इत्युच्यते।
त्रिज्यैष्ठ्यं परिवर्जनीयमथ तज्ज्येष्ठं द्वयं मंगलं
रुग्मिण्यार्तवशोधनं त्वितरयोः स्पृश्यावगाहैः कृते ।।

(उत्तर कालामृत/कर्मकाण्ड/श्लोक-१८)

यमल जातक हो, तो उनमें बड़ा वह है जिसका बीज पहले पड़ा है, परन्तु इस बात का निर्णय इस प्रकार है कि जिसको पिता ने पहले देखा हो, वह ज्येष्ठ है। त्रिज्येष्ठ से बचना चाहिए अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र अथवा पुत्री का विवाह ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। यह नियम उपनयन संस्कार के लिए भी है। इसी प्रकार 'ज्येष्ठ द्वय' को भी छोड़ना चाहिए अर्थात् सबसे बड़े पुत्र का विवाह अथवा अन्य शुभ संस्कार ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। भाई-बहन के लिए किए गए दो शुभ कृत्यों में न्यूनतम दो मास का अन्तर होना चाहिए। अन्य कृत्य अस्पृश्यता न होने की दशा में स्थानान्तर किए जा सकते है।

विवाह-मुहूर्त

वर-कन्या केजन्मांगों के मिलान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के दोषों का उल्लेख किया गया है। परन्तु प्रत्येक दोष का कोई न कोई परिहार अवश्य होता है। परिहार का अर्थ है दोष में अपेक्षाकृत न्यूनता, परन्तु दोष, गुण में परिवर्तन नहीं हो जाते अपितु उनकी तीव्रता, न्यूनता में रूपान्तरित हो जाती है। मेलापक सम्बन्धी कुछ बहु चर्चित परिहार अग्रांकित हैं -

१. कन्या की जन्मराशि विषम हो तथा कन्या की राशि से वर की राशि आठवीं हो तो शुभ स्थितियाँ प्रदर्शित होती है। उसी प्रकार यदि कन्या की राशि सम हो तथा वर की राशि कन्या की राशि से छठी हो तो भी स्थितियाँ शुभ होती हैं।

२. नाड़ीदोष कुछ नक्षत्रों में नहीं होता है वे नक्षत्र है- रोहिणी, रेवती, मृगशिरा, पुष्य, कृत्तिका, उ.भा., श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा।

३. वर और कन्या का जन्म उपर्युक्त नक्षत्रों में न हो परन्तु उनके जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरणभेद और अंश भेद हो तो नाड़ीदोष का स्वतः ही परिहार हो जाता है। परन्तु यदि वर व कन्या के जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरण भेद न हो तो अत्यधिक दोष होता है। यदि पाद भिन्न हो तो शुभ स्थिति होती है। इनके साथ यदि वर का चरण आगे हो तो शुभता में वृद्धि होती है। यदि वर व कन्या की राशि के स्वामी शुक्र, बृहस्पति व बुध हों तो नाड़ीदोष निरस्त हो जाता है।

४. यदि वर व कन्या के राशियों के स्वामियों या दोनों की चन्द्र नवांश राशि के स्वामियों में मैत्री हो तो सभी दोषों का परिहार हो जाता है।

इसके साथ ही विषकन्या, काकबन्ध्या तथा मंगलीदोष का समन्वय करने के उपरान्त कोई भी मांगलिक कार्य प्रतिपादित किया जाना चाहिए।

पक्ष व तिथि शुद्धि-

हमारे दिव्य ऋषि-मनीषियों ने कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष में से शुक्ल पक्ष को समस्त कार्यों हेतु शुभ कहा है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तक, मतान्तर से दशमी तक भी कार्य किये जा सकते हैं। तिथियों को ऋषियों ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। परन्तु रिक्ता तिथि को त्यागना चाहिए। तिथियों में भी चतुर्दशी, अमावस्या तथा शुक्त पक्ष की प्रतिप्रदा त्याज्य होती है।

कार्तिक मास का विशेष नियम-

आचार्यों ने कार्तिक मास की पूर्णिमा से पाँच दिन पहले व पीछे, विवाह में दोष नहीं बताया है अर्थात् तिथिवार, नक्षत्र तथा त्रिबल शुद्धि अविचारणीय होती है। इन तिथियों में बृहस्पति शुक्रास्त

होने पर भी विवाह सम्पन्न हो सकता है। परन्तु ग्रहण सूतक तथा चन्द्रबल पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए और गोधूलि तथा गोधूलि व लग्न को प्राथमिकता देनी चाहिए।

विवाह-मासादि-

आचार्यों ने माघ, फाल्गुन, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गीर्ष इन मासों को विवाह हेतु उपयुक्त बताया है। इसके अतिरिक्त आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि तक यदि कर्क संक्राति न हुई हो तो भी विवाह हो सकता है। पौष मास के उत्तरार्ध में यदि मकर संक्रान्ति हो गयी हो तो भी विवाह सम्भव है। अर्थात् विवाह मुहूर्त में मास, सौरस्थिति के आधार पर होता है। अतः मेष, वृष, मिथुन, वृश्चिक, मकर, कुम्भ संक्रान्ति मास विवाह हेतु उपयुक्त होते हैं।

वार-शुद्धि-

महर्षि वशिष्ठ ने सप्ताह के सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र दिवस को विवाह हेतु शुभ बताया है। रविवार और शनिवार को मध्यम तथा मंगलवार को विशेषकर त्यागना चाहिए, ऐसा कहा है।

नक्षत्र शुद्धि-

समस्त आचार्यों तथा दिव्य मनीषियों ने नक्षत्रों में रोहिणी, उ.भा., उ.षा., उ.फा., मूल, स्वाति, अश्विनी नक्षत्रों को उपयुक्त कहा है।

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगौ मघा। अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदाः ।।

त्रिषु उत्तरादिषु ।।

अर्थात् उ.फा., उ.षा., उ.भा. से अगले दो-दो नक्षत्र भी विवाह में ग्राह्य हैं।

प्रचेतस ऋषि ने पू.फा. की विवाह में ग्राह्यता स्वीकार किया है तथा पुष्य नक्षत्र को सबसे प्रमुख बताया है। एक मत यह भी है कि ब्रह्मा जी का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ था, तथा यही ब्रह्माजी शम्भु के विवाह के समय पार्वती पर मुग्ध हो गये थे, इस प्रकार यह शापित नक्षत्र है। पुष्य नक्षत्र में जो कार्य किया जाय वह बढ़ोत्तरी को प्राप्त होता है, इसलिए विवाह में यह वर्जित है।सीताजी सम्पूर्ण जीवन वनवासादि दुःख भोगती रहीं, उनका विवाह पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था। इस प्रकार पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र भी विवाह कार्य के लिए त्याज्य है।एक अन्य मत से मघा को या केवल मघा व मूल के प्रथम चरण मात्र को त्याज्य माना है।

योग शुद्धि-

वैधृति में वैधव्य, व्याघात में व्याधि, शूल में घाव, व्यातिपात में वंश नाश, अतिगण्ड में विषपान व वज्र में मृत्यु होती है। विषकुम्भ में प्राण संशय, गण्ड में रोग, परिधि में पति हानि एवं हर्षण में शोक होता है। हर्षण रहित उक्त ९ योग का वर्जना भी कुछ विद्वानों के अनुसार स्वीकरणीय है।

करण शुद्धि-

विष्टी या भद्रा के सम्बन्ध में सभी विद्वानों ने सर्वसम्मत रूप से इसका पूर्णतया त्याग करने को कहा हैं। शुकनादि चार स्थिर करण भी त्याज्य है। इनका त्याग स्वयमेव हो जाता है, यदि कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या आदि तिथि को छोड़ दिया जाय।

विवाहे करणाः सर्वे शोभना विष्टिवर्जिताः।

अतः सम्भावित विवाह तिथि का निर्णय, तिथि, वार नक्षत्र व मासादि के योगों के आधार पर किया जाता है। तदुपरान्त जिस तिथि का निर्णय किया गया है, उस तिथि को भी विशेष दस दोषों का निराकरण एवं लग्न का निर्धारण करते हैं। वो दस दोष कोन-कोन से है, उनका अध्ययन आगे किया जा रहा है।

विवाह में विशेष १० दोष निम्नलिखित हैं-

१. लत्ता, २. पात, ३. युति, ४. वेध, ५. जामित्र, ६. वाण पंचक, ७. एकार्गल, ८. उपग्रह, ९. क्रान्तिसाम्य, १०. दग्धा तिथि का त्याग यथासंभव किया जाना चाहिए। यहाँ इसके अतिरिक्त वेध व क्रान्तिसाम्य का विचार करके इनका सर्वत्र त्याग ही किया जाना चाहिए।

१. लत्ता दोष-

इस दोष को लात दोष भी कहते हैं। बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उससे आगे के छठे नक्षत्र पर सूर्य १२वें नक्षत्र पर, मंगल तीसरे नक्षत्र पर, शनि आठवें पर लात मारता है।इसी प्रकार पूर्ण चन्द्र अपने नक्षत्र से पिछले २२वें नक्षत्र पर, राहु नौवें पर, बुध सातवें पर, शुक्र पाँचवें नक्षत्र पर लात मारता है। राहु के वक्री होने पर उसका पिछला नक्षत्र सदैव अगला ही समझना चाहिए।

वैसे तो किसी भी ग्रह की लत्ता या लात अच्छी नहीं होती, किन्तु मतान्तर से सिर्फ पाप ग्रहों की लत्ता ही त्याग करने की बात कही गयी है। तात्पर्य इतना है कि विवाह नक्षत्र या. मुहूर्त निश्चय करने के लिए इन दोषों का विचार किया जाता है।

हम पंचांग देखते समय पाते हैं कि विवाह मुहूर्त या विवाह नक्षत्र के सामने कुछ खड़ी रेखाएँ लगी हुई हैं। वहाँ पर जो रेखा मुड़ी होती है वही दोष होता है ऐसा समझना चाहिए। यथा जिस दिन पंचांग में विवाह-मुहूर्त के सामने इस प्रकार रेखाएँ लगी है, ।।।५।।।।। यहाँ छठी रेखा मुड़ी है। अतः उस दिन छठा दोष या बुध पंचक दोष है।

उदाहरणार्थ अनुराधा नक्षत्र में विवाह है तो अनुराधा से आगे सातवें धनिष्ठा नक्षत्र में बुध, इसी प्रकार आगे २२वें नक्षत्र में पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र इत्यादि न पड़े तो लत्ता दोष नहीं होगा।

२. पात दोष-

पात दोष का त्याग प्रायः विवाहादि शुभ कार्यों में करना उचित होता है। इसका दूसरा नाम "चण्डीश चण्डायुध" भी है। इसका सम्बन्ध पंचाग में बताये गये साध्य, हर्षण, शूल, वैधृति, व्यतिपात व गण्ड योगों से है। इन योगों का जो अन्तसमय पंचांग में लिखा हो, उस समय जो नक्षत्र (चिन्न सक्षम या दिन नक्षत्र) होगा, वह पात दोष से दूषित होता है पात दोष का त्याग सिर्फ कौशल देश या कुरु जांगल प्रदेश (कुरुक्षेत्र, राजपूताना) में ही किया जाता है।

३. युति दोष-

युति अर्थात् योग/युति दोष उस समय होता है जब विवाह के समय चन्द्र नवर से पाप ग्रह युति करते हों तो युति दोष का निर्माण होता है। चन्द्रमा यदि अपनी राशि में हो या उच्च का हो तो विशेष प्रभाव नहीं होता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि किसी भी ग्रह की युति हो वह अच्छा नहीं होता है। युति का परिहार केवल चन्द्रमा के बलवान होने से ही होता है।

दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन नष्टप्रजा ।
दौर्भाग्यं गुरुणां सितेन सहिते चन्द्रेण सापल्यकम ।।

शुभ ग्रह बुध व गुरु दोष कारक नहीं माने जाते हैं। चन्द्रमा और अन्य ग्रह का भी नक्षत्र एक ही हों पर दोनों राशि अलग हों तो भी युति दोष माना जायेगा। युति दोष का विचार बंगाल में किया जाता है।

४. वेध दोष-

वेध दोष का त्याग सर्वत्र किया जाता है। पंचशलाका व सप्तशलाका वेध दो प्रकार से किया जाता है। इस बात को इस प्रकार से समझा जाता है कि यदि सीधी पाँच आड़ी रेखाओं से वेध चक्र बनता है तो पंचशलाका और सात रेखाएँ सीधी व सात आड़ी खींचे तो सप्तशलाका चक्र बनेगा। पंचशलाका वेध का विचार विवाह, वधू प्रवेश, वरण आदि में किया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्यों में सप्तशलाका वेध का विचार करना चाहिए।

वधू प्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने ।
धः पंचशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः ।।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि नक्षत्रों का वेध होता है यदि वे एक ही रेखा पर पड़ते हों। विवाह नक्षत्र का जिसके साथ वेध हो, उस नक्षत्र में यदि कोई ग्रह स्थित हो तो वेध माना जायेगा।

यामित्र दोष विचार -

लग्नाचन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।
किं वा बाणाभुगमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ।।

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो यामित्र दोष होता है। यदि लग्नगत नवमांश या चन्द्रगत नवमांश से ५५ वें नवमांश में ग्रह हो अर्थात् लग्न ग्रह का अन्तर ६ राशि हो तो पूर्ण यामित्र दोष होता है, यह विवाह में अशुभप्रद होता है। साधारण यामित्र कम दोष देनेवाला और पूर्ण यामित्र अधिक दोष देने वाला होता है, एवं शुभग्रह कृत यामित्र स्वल्पदोषप्रद और पापग्रह कृत अधिक दोषप्रद होता है।

बाण दोष विचार -

रसगुण शशिनागाब्ध्याढयसंक्रान्तियातां - शकमिति - रथतष्टाकैर्यदा पञ्चशेषः ।
रूगनल नृपचौरा मृत्यु संज्ञश्च बाणो नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः ।।

तात्कालिक सूर्य के भुक्तांशों को ५ स्थान में रखकर क्रम से ६,३,१,८,४ जोड़कर सब में ९ के भाग देने से प्रथम स्थान में ५ शेष तचे तो रोगबाण, द्वितीय स्थान में अग्नि, तृतीय स्थान में राज, चतुर्थ स्थान में चोर और पंचम स्थान में मृत्युबाण होता है।
विशेष - सूर्य के गतांशा के अनुसार भी बाणों का निर्धारण किया जाता है।
जैसे- १,८,१७,२६ इन अंशों में सूर्य हो तो रोगबाण होता है।
२,११,२०२९ इन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है।
४,१३,२२ इन अंशों पर सूर्य हो तो राज बाण जानना चाहिए।
६,१५,२४ इन अंशों पर सूर्य हो तो चौर बाण होता है।
९,१०,१९,२८ इन अंशों में सूर्य हो तो मृत्युबाण समझना चाहिए।

एकार्गल दोष दोष विचार –

व्याघात गण्ड व्यतिपात पूर्वेशूलान्त्यवचे पारिघाति गण्डे।
एकार्गलाख्यो ह्यभिजित समेतो दोषः शशी चेद् विषमर्क्षगोऽर्कात् ।।

व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में कोई योग हो उस दिन सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्राश्रित नक्षत्र की संख्या विषम हो तो एकार्गल दोष होता है यहाँ नक्षत्रों की गणना अभिजित् समेत होती है।

उपग्रह दोष विचार

शराष्टदिक् शक्रनगातिधृत्यास्तिथिधृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराःशुभा न देशे कुरूवह्निकानाम् ।।

यदि सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना करने से

५,८,१०,१४,७,१९,१५,१८,२१,२२,२३, २४, २५ इनमें से कोई संख्या हो तो उपग्रह दोष होता है या कहलाता है। यह कुरू और वाह्निक देश में शुभ नहीं होता है।

९. क्रान्तिसाम्य दोष

इस दोष को 'महापात दोष' भी कहते हैं। सूर्य-चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर क्रान्तिसाम्य दोष होता है। शुभ कार्यों में इस दोष की बड़ी निन्दा की गयी है। इसमें विवाह करना सर्वत्र ही वर्जित है।

इस दोष के होने पर यहाँ तक कहा गया है कि क्रान्तिसाम्य दोष में विवाह करने पर पति-पत्नी दोनों का ही निधन हो जाता है। गणित के पातोऽध्याय के अनुसार इसका विचार किया जाना चाहिए।

शस्त्राहतोऽग्निदग्धो वा नागदष्टोऽपि जीवति।
क्रान्तिसाम्यकृतोद्वाहो न जीवति कदाचन ।।

सिंह व मेष, वृष व मकर, तुला व कुंभ, मिथुन व धनु, कर्क व वृश्चिक, कन्या व मीन राशि युगलों में सूर्य व चन्द्रमा रहें तभी इसकी संभावना होती है।

व्यतीपात योग -

जब सायन सूर्य - चन्द्रमा का योग ६ राशि के समान होता है अर्थात् १+५,२+४,४ + २,५ + १, तो दोनों के भिन्न अयन और एक गोल होते हैं तथा दोनों के भुजांश तुल्य होने से क्रान्ति भी तुल्य होती है इसलिए इसे व्यतिपात नाम का महापात कहते हैं।

दग्ध तिथि विचार -

चापान्त्यगे गो घटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ।
सिंहालिगे नक्रघटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीया प्रमुखाश्च दग्धा ।।

सूर्य यदि धुनु या मीन में हो तो द्वितीय, वृष, कुम्भ में हो तो चतुर्थी, कर्क मेष में हो तो षष्ठी, मिथुन कन्या में हो तो अष्टमी, सिंह वृश्चिक में हो तो दशमी और मकर या तुला में हो तो, द्वादशी तिथि दग्ध होती है यह भी विवाहादि शुभ कार्यो में वर्जित है।

लता पात आदि दस दोष निवारण के बिना 'विवाह संस्कार' अहित कारक हो जाता है। विवाह में मुख्य रूप से लता, पात, युति, जामित्र, बाण, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्धा तिथि इन दस दोषों का विचार किया जाता है। इनमें से पापग्रह कृत युति, वेध, मृत्युबाण एवं क्रान्तिसाम्य अपरिहार्य होने से नहीं माने गये हैं।

विवाह में लग्न शुद्धि

वर-कन्या के विवाह के लिए जो सबसे प्रमुख या जिसको सबसे अधिक प्रधानता दी जानी चाहिए वह है मुहूर्त काल के लग्न की। विवाहादि जैसे मांगलिक कार्य के लिए लग्न और नवांश की शुद्धि प्रमुखतया विचारणीय विषय होना चाहिए।

त्याज्य या वर्जित लग्न

वर्जित लग्न का विचार वर-कन्या की क्रमशः जन्मराशि व जन्मलग्न से करना उपयुक्त होता है। इसी तरह यदि वर या कन्या किसी का भी जन्मलग्न से अष्टमेश यदि विवाह लग्न में स्थित हो तो उस लग्न में विवाह नहीं करना चाहिए। वर-कन्या की जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम राशि का लग्न व नवांश यदि बहुत हद तक उपयुक्त भी हो तो

भी त्याग करना उचित होता है।

लग्न भंग योग

किसी भी ग्रह का विवाह लग्न से, लग्न में पापयुक्त या क्षीण चन्द्र तथा अन्य कोई भी पापग्रह अथवा बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र ग्रह का होना शुभ नहीं होते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि सप्तम या अष्टम स्थान ग्रह रहित होने चाहिए या इस बात को इस प्रकार से कह सकते हैं कि कोई भी ग्रह प्रशस्त नहीं माना जाता यदि विवाह लग्न से सप्तम स्थान में कोई भी ग्रह हो। इसी प्रकार लग्नेश, चन्द्र तथा शुक्र षष्ठ में तथा चन्द्र लग्नेश शुभ ग्रह और मंगल आठवें स्थान में होने पर विवाह-लग्न नहीं बनेगी।

कर्तरी-दोष

कर्त्तरी दोष लग्न की शुभता में कमी करता है। यदि लग्न के दोनों ओर पापग्रह हों तब कर्त्तरी दोष का निर्माण होता है तथा यदि लग्न के एक ओर शुभ ग्रह तथा दूसरी ओर अशुभ ग्रह हो तो मध्य कत्त्तरी दोष होता है। इसका भी त्याग करना उचित होता है। ठीक इसी प्रकार कर्तरी दोष का विचार चन्द्रमा से भी करना चाहिए। विवाह लग्न से द्वितीय में वक्री पापी ग्रह तथा द्वादश स्थान।

कत्त्तरीभंग-योग

बृहस्पति बहुत बलशाली होकर लग्न या विवाह लग्न में हो तो पाप कर्त्तरी दोष का प्रभाव कम हो जाता है या कर्त्तरी योग उस स्थिति में भी भंग हो जाता है जब शेष ग्रह शुभ स्थानों में हों। कई अन्य दोषों का शमन उस स्थिति में भी हो जाता है जब केन्द्र (१,४,७,१०) में शुभ ग्रह बलवान हों।

अन्ध, बधिर व पंगु लग्न

मेष से कन्या तक अन्ध राशि, तुला से मकर तक बधिर व कुम्भ मीन राशियाँ पंगु होती है। ये लग्न किस प्रकार से दोष प्रद होते हैं, इसका विचार निम्न प्रकार से करते हैं।

१,२,५ लग्न दिन में व ३,४,६ रात्रि में अन्ध होते हैं। ७,८ दिन में तथा ९,१० रात में बधिर होते हैं। ११ दिन में व १२ रात में पंगु होती हैं। यदि ये राशियाँ अपने स्वामी या गुरु, बुध से दृष्टयुक्त हों तो उक्त दोष नहीं लगता है। इसी प्रकार चर लग्न, उसमें भी विशेषतया चर नवांश सर्वथा वर्जित करना चाहिए। राशि का अन्तिम नवांश भी विवाह में वर्जित होना चाहिए। लेकिन उक्त स्थिति में वर्गोत्तम स्थिति होने पर लग्न शुभ माना जायेगा।

बोध प्रश्न-

1. एक घटी में मिनट होते है।

क. २२ मिनट ख. २४ मिनट

ग. २३ मिनट घ. २० मिनट

2. सूर्य किन अंशों पर हो तो चौर बाण होता है।

क. ६,१५,२४ ख. ४,१२,१४,

ग. ५,१३,१८, घ. ७, १८,२६,

3. सूर्य किन अंशों पर हो तो राज बाण जानना चाहिए।

क. ५,१३,१८ ख. ४,१३,२२

ग. ७, १८,२६, घ. ४,१२,१४,

4. वेध दोष कितने प्रकार का होता है।

क. चार प्रकार का ख. तीन प्रकार का

ग. दो प्रकार का घ. पांच प्रकार का

5. विवाह में मुख्यतः कितने दोषों को देखा जाता है।

क. पांच ख. चार

ग. आठ घ. दस

5.6 सारांश

विवाह एक अत्यंत पवित्र और जीवनभर के संस्कारों में से एक है, जिसमें केवल सामाजिक बंधन ही नहीं, बल्कि धर्म, सदाचार, दांपत्य सुख और संतान सुख की प्राप्ति का भी महत्व निहित है। ज्योतिष शास्त्र में विवाह के सफल और स्थिर होने के लिए ग्रहों की स्थिति का विशेष महत्व माना गया है, जिसमें गुरु ग्रह (बृहस्पति) को अत्यंत शुभ और कल्याणकारी ग्रह माना गया है। गुरु को धर्म, ज्ञान, सदाचार, संतान और दांपत्य सुख का कारक ग्रह माना गया है। शास्त्रों के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की कुंडली में गुरु शुभ, बलवान और शुभ भावों में स्थित हो, तो उसका विवाह सुखद और स्थिर होता है। स्त्री की कुंडली में बलवान गुरु श्रेष्ठ पति की प्राप्ति का सूचक है, जबकि पुरुष की कुंडली में शुभ गुरु धर्मपरायण और जिम्मेदार जीवनसाथी बनने का संकेत देता है। गुरु ग्रह की स्थिति केवल कुंडली तक सीमित नहीं है, बल्कि विवाह मुहूर्त में गुरु-शुद्धि का विचार भी आवश्यक माना गया है। अस्त, बाल या वक्री गुरु के समय विवाह अशुभ परिणाम दे सकता है, जबकि शुद्ध गुरु दांपत्य जीवन में प्रेम, विश्वास और संतान सुख प्रदान करता है। सप्तम, द्वितीय और नवम भाव गुरु के विशेष प्रभाव वाले भाव माने गए हैं, जो क्रमशः दांपत्य, परिवार और धर्म का सूचक हैं। इसके अतिरिक्त विवाह मुहूर्त में वार, तिथि, नक्षत्र, योग, करण और मास की शुद्धि भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी गई है। जैसे शुक्ल पक्ष, विशेष मास (माघ, फाल्गुन, बैशाख आदि) और शुभ वार (सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र) में विवाह अधिक फलदायक माना गया है। विवाह में दोषों का विचार भी अत्यंत आवश्यक है। दस प्रमुख दोष-लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाण पंचक, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य और दग्धा तिथि-का निवारण किए बिना विवाह अशुभ हो सकता है। प्रत्येक दोष का विशिष्ट प्रभाव होता है, जैसे युति दोष या क्रान्तिसाम्य दोष विवाह में तनाव, क्लेश या गंभीर परिणाम उत्पन्न कर सकते

हैं। शास्त्रों में गोधूलि लग्न को विशेष शुभ माना गया है, क्योंकि यह अधिकांश दोषों का शमन कर देता है और विवाह के लिए उपयुक्त समय प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त वर और कन्या के जन्मांगों, नक्षत्र, राशि, नवांश और जन्मराशि का मेल भी विवाह की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ नक्षत्र जैसे पुष्य और पूर्वा फाल्गुनी विवाह कार्यों के लिए वर्जित माने गए हैं, जबकि रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, स्वाति आदि नक्षत्र शुभ माने जाते हैं। विवाह में शुभ मुहूर्त का निर्धारण करते समय सभी ग्रह योग, तिथि, वार, नक्षत्र और दोषों का परिहार करना आवश्यक है, ताकि दांपत्य जीवन सुखमय, स्थिर और कल्याणकारी हो। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुरु ग्रह और पंचांग आधारित मुहूर्त शुद्धि विवाह के लिए आधार स्तंभ हैं। गुरु की अनुकूल स्थिति, दोषों का निवारण और शुद्ध लग्न, तिथि, वार, नक्षत्र और मास के चयन से विवाह केवल सामाजिक बंधन नहीं रह जाता, बल्कि जीवन को धर्मपूर्ण, सुखद और सार्थक बनाने वाला पवित्र संस्कार बन जाता है। यही कारण है कि शास्त्रों में विवाह मुहूर्त और गुरु-शुद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

5.7बोध प्रश्नों के उत्तर

1.ख 2.क 3.ख 4.ग 5.घ

5.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त पारिजात
2. मेलापक मीमांशा
3. मुहूर्त पारिजात
4. मुहूर्त गणपति
5. विवाह वृन्दावन

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह में होने वाले गुण-दोषों का वर्णन कीजिए।

2. विवाह में गुरु शुद्धि व वरण मुहूर्तों पर प्रकाश डालिये।

इकाई 5 मण्डपाच्छादन

इकाई की संरचना –

5.1 प्रस्तावना
5.2उद्देश्य
5.3 मण्डपाच्छादन परिचय
5.4 मण्डप के प्रमुख अंग
5.5 सारांश
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह इकाई बी.ए.कर्मकाण्ड के शिक्षणोत्तर संस्कार के इकाई मण्डपाच्छादन नाम से है।इस इकाई में आप विवाह के मण्डप की विषय में समझ पायेंगे।भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं है, बल्कि यहएकपवित्र संस्कार और सामाजिक अनुष्ठानहै। यह संस्कार व्यक्ति के जीवन में न केवल व्यक्तिगत, बल्कि पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों की भी नींव रखता है। विवाह के सभी अनुष्ठानों का केंद्र होता हैमण्डप, जो केवल एक स्थायी या अस्थायी ढांचा नहीं, बल्कि जीवन, संस्कार और सामाजिक मूल्यों का प्रतीक है। मण्डप को सजाना और उसका आच्छादन करना विवाह संस्कार का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। मण्डप का आच्छादन केवल भव्यता के लिए नहीं किया जाता, बल्कि इसका गहराआध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक महत्वहै। वैदिक परम्परा में कहा गया है कि मण्डप के मध्य में स्थापित अग्नि विवाह का प्रमुख साक्षी होती है। फूल, वस्त्र, दीपक, कलश और अन्य सजावटी तत्व केवल शोभा बढ़ाने के लिए नहीं होते, बल्कि यह दम्पत्ति और उपस्थित लोगों के मन मेंशांति, श्रद्धा और सकारात्मक ऊर्जाका संचार करते हैं। आच्छादन यह स्मरण कराता है कि विवाह केवल भौतिक मिलन नहीं, बल्कि धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों का आरम्भ है। सांस्कृतिक दृष्टि से मण्डप की सजावट समाज और परम्परा का प्रतीक होती है। प्रत्येक रंग, पुष्प और वस्तु का अपना विशेष अर्थ है। उदाहरण स्वरूप, लाल और पीला रंग शुभ और मंगलकारी माने जाते हैं, जबकि दीपक अज्ञानता दूर कर ज्ञान का संदेश देता है। इस प्रकार मण्डप के आच्छादन के माध्यम से विवाह मेंसौहार्द, सामाजिक एकता और सांस्कृतिक परंपराका भाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार, मण्डप का आच्छादन केवल शोभा का माध्यम नहीं है, बल्कि यहआध्यात्मिक ऊर्जा, सामाजिक सौहार्द, सांस्कृतिक प्रतीक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणाका एक समग्र रूप है। यह विवाह स्थल को पवित्र, मंगलकारी और यादगार बनाता है।

5.2 उद्देश्य

- ❖ मण्डप क्या है इसे समझ सकेंगे।
- ❖ विवाह में मण्डप की क्या भूमिका है, इसे जान पायेंगे।
- ❖ मण्डप में स्तंभों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- ❖ विवाह मण्डप के अन्य पक्षों को भी जान पायेंगे।

5.3 मण्डपाच्छादन परिचय

विवाह में मण्डप का महत्व,वैदिक अर्थ-

वैदिक दृष्टि से मण्डप केवल सजावटी संरचना नहीं है। वह ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। उसके चार स्तम्भ चार दिशाओं, चार वेदों और चार पुरुषार्थों -धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष -का प्रतिनिधित्व करते हैं। मण्डप के मध्य स्थित अग्नि ब्रह्मतत्त्व की प्रतीक है, जो दम्पत्ति के जीवन का नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन करती है। इस प्रकार विवाह–मण्डप एक ऐसा पवित्र क्षेत्र बनता है जहाँ सांसारिक जीवन का आरम्भ वैदिक मर्यादाओं के साथ होता है। भारतीय परम्परा में विवाह केवल दो व्यक्तियों का सामाजिक समझौता नहीं, बल्कि एक पवित्र संस्कार है। इसे जीवन के चार आश्रमों में से गृहस्थाश्रम में प्रवेश का द्वार माना गया है। इस महान संस्कार का केन्द्र होता है विवाह मण्डप। मण्डप केवल सजावटी ढाँचा नहीं, बल्कि विवाह की समस्त क्रियाओं का आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आधार है। विवाह मण्डप को वैदिक परम्परा में पवित्र क्षेत्र माना गया है। इसके चार स्तम्भ चार दिशाओं, चार वेदों और चार पुरुषार्थों -धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष -के प्रतीक हैं। मण्डप के मध्य स्थित अग्नि विवाह की साक्षी होती है, जो दम्पत्ति को सत्य, कर्तव्य और नैतिकता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार मण्डप एक सीमित स्थान में सम्पूर्ण जीवन दर्शन को समेटे हुए होता है। विवाह से जुड़े सभी प्रमुख संस्कार गणेश पूजन, कलश स्थापना, अग्नि प्रज्वलन, पाणिग्रहण और सप्तपदी मण्डप में ही सम्पन्न होते हैं। यह दर्शाता है कि मण्डप विवाह के सभी धार्मिक कृत्यों का केन्द्र है। इन संस्कारों के माध्यम से वर–वधू मानसिक और भावनात्मक रूप से नए जीवन के लिए तैयार होते हैं। मण्डप उन्हें यह स्मरण कराता है कि विवाह केवल उत्सव नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व और समर्पण का संकल्प है। मण्डप में परिवारजन, गुरुजन, समाज के वरिष्ठ सदस्य और मित्र एकत्र होते हैं। यह सामूहिक उपस्थिति विवाह को सामाजिक मान्यता प्रदान करती है। मण्डप के भीतर लिया गया संकल्प केवल व्यक्तिगत नहीं रहता, बल्कि समाज के समक्ष लिया गया वचन बन जाता है। इससे विवाह की गरिमा और स्थायित्व बढ़ता है, जो आज के समय में अत्यन्त आवश्यक है। मण्डप में प्रवेश से लेकर विवाह सम्पन्न होने तक एक निश्चित मर्यादा और अनुशासन का पालन किया जाता है। यह अनुशासन वर–वधू को यह शिक्षा देता है कि वैवाहिक जीवन भी मर्यादा, संयम और पारस्परिक सम्मान पर आधारित होना चाहिए। मण्डप में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया जीवन के किसी न किसी पक्ष से जुड़ी हुई है। परम्परागत विवाह मण्डप प्राकृतिक तत्त्वों से निर्मित होता है -जैसे लकड़ी, पत्ते, पुष्प और मिट्टी। इससे मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य का संदेश मिलता है। आज जब विवाह समारोह अत्यधिक कृत्रिम और खर्चीले होते जा रहे हैं, मण्डप का यह प्राकृतिक स्वरूप सादगी और संतुलन का आदर्श प्रस्तुत करता है।

वर्तमान समय में मण्डप का महत्व- आधुनिक युग में विवाह समारोह भले ही भव्य और आकर्षक हो गए हों, परन्तु मण्डप का मूल महत्व आज भी अपरिवर्तित है। यह विवाह को केवल सामाजिक आयोजन न बनाकर एक संस्कार का रूप देता है। मण्डप में अग्नि को साक्षी मानकर लिए गए व्रत दम्पत्ति को जीवन भर एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान रहने की प्रेरणा देते हैं। विवाह में मण्डप की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह न केवल धार्मिक क्रियाओं का स्थल है, बल्कि वैवाहिक

जीवन के मूल मूल्यों का प्रतीक भी है। मण्डप वर–वधू को यह बोध कराता है कि विवाह केवल साथ रहने का नाम नहीं, बल्कि जीवन भर धर्म, कर्तव्य और प्रेम के मार्ग पर साथ चलने का संकल्प है। इसी कारण भारतीय विवाह परम्परा में मण्डप को विशेष स्थान प्राप्त है।

विवाह–मण्डप भूमिका-

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का सामाजिक अनुबंध नहीं, बल्कि एक गहन आध्यात्मिक संस्कार है। वैदिक परम्परा में इसे*यज्ञ*के रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ वर–वधू यजमान होते हैं और अग्नि साक्षी। इस सम्पूर्ण वैवाहिक यज्ञ का केन्द्रबिन्दु है विवाह–मण्डप। वर्तमान समय में, जब विवाह समारोह अधिकतर दिखावे, भौतिकता और तात्कालिक आकर्षण तक सीमित होते जा रहे हैं, तब वैदिक विवाह–मण्डप विधान की भूमिका और अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

मण्डप – संसार
अग्नि – धर्म
वर – पुरुष तत्त्व
वधू – प्रकृति/शक्ति
यज्ञ – संयुक्त जीवन यात्रा
पवित्र वेदी: यह एक पवित्र स्थान (यज्ञशाला) है जहाँ विवाह संस्कार संपन्न होता है, जिसमे अग्नि को साक्षी मानकर फेरे लिए जाते हैं।

घर का प्रतीक: मंडप उस घर का प्रतिनिधित्व करता है जिसे जोड़ा मिलकर बनाता है, और इसके चार स्तंभ प्रेम, विश्वास, सम्मान और समझ के मूल्यों को दर्शाते हैं, जो एक सफल विवाह के आधार हैं।

देवताओं का वास: माना जाता है कि मंडप में सभी देवी-देवता निवास करते हैं और वे वर-वधू के वैवाहिक जीवन को आशीर्वाद देते हैं, जिससे विवाह शुभ और निर्विघ्न संपन्न होता है।

आध्यात्मिक आश्रय: यह सिर्फ एक ढांचा नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक आश्रय है जो दो आत्माओं के मिलन का साक्षी बनता है और उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित करता है।

विघ्न-बाधाओं से सुरक्षा: राक्षसों और अन्य विघ्नों से बचने के लिए मंडप बनाया जाता है, ताकि विवाह बिना किसी बाधा के संपन्न हो सके।

समृद्धि का प्रतीक: मंडप में कलश, केले के पत्ते, और अन्य चीजें रखी जाती हैं, जो समृद्धि, भोजन और ईश्वर के आशीर्वाद का प्रतीक हैं, एक समृद्ध गृहस्थ जीवन की ओर इशारा करती हैं।

अवधारणा और चुनौती-

आज के सामाजिक परिदृश्य में विवाह की अवधारणा में तीव्र परिवर्तन आया है। विवाह समारोह अधिकतर प्रदर्शन, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक दबाव से प्रेरित हो गए हैं। मण्डप की भव्यता तो बढ़ी है, परन्तु उसका आध्यात्मिक अर्थ प्रायः लुप्त होता जा रहा है। ऐसे में वैदिक विवाह–मण्डप विधान हमें यह स्मरण कराता है कि विवाह का उद्देश्य केवल उत्सव नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व, संयम और सहधर्म है। वैदिक विवाह–मण्डप केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक संस्कार भी है। मण्डप में परिवार, समाज और देवताओं की संयुक्त उपस्थिति का भाव निहित होता है। यह भाव आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक जीवन में व्यक्ति अकेलापन और पारिवारिक विघटन का अनुभव कर रहा है। मण्डप विधान यह स्मरण कराता है कि विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों और व्यापक समाज का मिलन है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट वैश्विक चुनौती बन चुका है। वैदिक मण्डप विधान स्वभावतः प्रकृति–सम्मत है। इसमें काष्ठ, पत्ते, पुष्प, मिट्टी और अग्नि जैसे प्राकृतिक तत्त्वों का उपयोग होता है। यदि आधुनिक विवाह इस दृष्टिकोण को अपनाएँ, तो यह भव्यता के स्थान पर सादगी और प्रकृति–संतुलन का संदेश दे सकता है। यह वैदिक दृष्टि आज के समय में अत्यन्त आवश्यक है। विवाह–मण्डप में अग्नि को साक्षी मानने की परम्परा दम्पत्ति को यह बोध कराती है कि उनका जीवन केवल कानूनी अनुबंध नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है। वर्तमान समय में, जब रिश्तों में तात्कालिकता और अस्थिरता बढ़ रही है, तब यह चेतना विवाह को स्थायित्व प्रदान कर सकती है। वर्तमान सन्दर्भ में वैदिक परम्परा में विवाह–मण्डप विधान की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह न केवल विवाह को संस्कारात्मक बनाता है, बल्कि व्यक्ति, परिवार और समाज को नैतिक आधार प्रदान करता है। बदलते समय में जब विवाह की पवित्रता और स्थायित्व पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं, तब वैदिक विवाह–मण्डप विधान हमें मूल्यों की ओर लौटने का मार्ग दिखाता है। यह विधान आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना वेदकाल में था, क्योंकि इसका उद्देश्य मानव जीवन को संतुलित, उत्तरदायी और आध्यात्मिक बनाना है।

5.4 मण्डप के प्रमुख अंग

विवाह मण्डप की संरचना

दिशा चयन - विवाह मण्डप का स्थल शुद्ध, समतल, स्वच्छ होना चाहिए। भागवत्, मनुस्मृति तथा विभिन्न धर्मशास्त्रों में दिशा-निर्देशों का विशेष महत्व बताया गया है।शास्त्रों के अनुसार विवाह मण्डप का चयन विश्व-ऊर्जा के अनुरूप होना चाहिए। इससे वातावरण में शुभ ऊर्जा का संचार होता है। **"पूर्वयुते स्थापनं मण्डपस्य परमं शुभम्।"**

अर्थ:पूर्व दिशा में मण्डप का स्थापित होना अत्यंत शुभ माना गया है, क्योंकि इससे शुभ ऊर्जा का प्रवेश होता है।यदि विवाह का मण्डप पूर्व दिशा की ओर उन्मुख करके बनाया जाए, तो वह बहुत शुभ और मंगलकारी माना जाता है। **पूर्व दिशा:**सूर्य के उदय की ओर -शुभता का प्रतीक

उत्तर-पूर्व:ईशान का मार्ग -आध्यात्मिक ऊर्जा

दक्षिण-पूर्व:अग्निदेव का स्थान -शुद्धता
उत्तर-पश्चिम तथा अन्य दिशाएँ:संतुलन और वातावरण

समय (मुहूर्त)

विवाह मण्डप की स्थापना में समय का विशेष महत्व है। पंचांग के अनुसारशुभ मुहूर्त, नक्षत्र, योग, वार, करणसभी को ध्यान में रखकर स्थापना और अनुष्ठान संपन्न किया जाना शुभ फल दायक होते हैं।

"शुभे मुहूर्ते कार्ये सर्वे सिद्ध्यन्ति न संशयः।
देवता एव सहकार्यं कुर्वन्ति शुभे सदा हम्॥"

अर्थ:शुभ मुहूर्त में किए गए कार्यों में कोई संशय नहीं रहता; देवता भी शुभ कार्यों में सहायता करते हैं।इसका अर्थ है निर्धारित समय पर मण्डप स्थापित करना अत्यंत लाभदायक एवं मंगलकारी होता है।

भूमि पूजन मंत्र

ॐ पृथिवि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

भावार्थ:
हे पृथ्वी देवी! जिस प्रकार तुम सम्पूर्ण लोकों को धारण करती हो, उसी प्रकार इस यज्ञ को धारण करो और इस स्थान को पवित्र बनाओ।

चार स्तंभों स्थापना

विवाह मण्डप केचार स्तम्भशास्त्रीय दृष्टि से जीवन के चार स्तम्भ-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रतीक माने जाते हैं। यही चार स्तम्भ वर-वधू को जीवन के मूल तत्वों में स्थिरता प्रदान करते हैं।

"धर्मोऽर्थकाममोक्षश्च, स्तम्भाः पञ्च जीवनस्य च।
मण्डपस्थापनं तेषां, सम्यक् सिद्ध्यै तथा शुभम्॥"

आश्रय यह है किधर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानव जीवन के मुख्य आधार हैं,और इन्हें जीवन के स्तम्भ माना गया है। विवाह मण्डप की स्थापना इन्हीं मूल्यों को ध्यान में रखकर की जाती है, ताकि गृहस्थ जीवन इन चारों उद्देश्यों की सही और संतुलित पूर्ति कर सके। मण्डप इन जीवन–स्तम्भों का प्रतीक बनकर दम्पत्ति को यह संदेश देता है कि उनका वैवाहिक जीवन केवल भौतिक सुख तक सीमित न रहे, बल्कि धर्म और आत्मिक उन्नति के मार्ग पर भी आगे बढ़े।मण्डप की स्थापना उनके सम्यक् सिद्धि हेतु शुभ है। मण्डप केवल भौतिक संरचना नहीं, अपितु जीवन के चार प्रमुख तत्वों का सांकेतिक प्रतिनिधि है।

मण्डप स्थापन मंत्र

ॐ त्रियम्बक्म यजामाहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

भावार्थः
यह मण्डप दम्पत्ति के जीवन में सुगन्ध, पुष्टि और अमृततुल्य सुख प्रदान करे।

मण्डप की संरचना

चार खम्भे (कदली, अशोक या आम की लकड़ी)
ऊपर छाजन (कपड़ा/पत्ते)
मध्य में यज्ञ वेदी
पूर्व या उत्तर मुखी प्रवेश

चार खम्भे प्रतीक हैं:

ऋग्, यजुः, साम, अथर्व वेद
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र
बाल्य, यौवन, प्रौढ़, वृद्ध अवस्था

स्तम्भ पूजन मंत्र

ॐ स्थिरो भव।
ॐ ध्रुवो भव।
ॐ अचलो भव।
ॐ अचलप्रतिष्ठितो भव॥

भावार्थ:
हे मण्डप! तुम स्थिर, अडिग और दीर्घकाल तक मंगलमय रहो।

यज्ञ स्थल के रूप में पवित्रता

विवाह मण्डप वह स्थल है जहाँयज्ञ (हवन)होता है। यज्ञ जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है तथा मनोकामनाएँ पूर्ण करता है।

"यज्ञेन हि सन्ततं पूज्यते ब्रह्मणः शुभम्।
हवनं च ततः प्राप्य, जीवनं यथार्थ परिणामः॥"

अर्थ:हवन से जीवन को यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है। यज्ञ के माध्यम से परमात्मा (ब्रह्म) की निरन्तर पूजा की जाती है,और यही पूजा जीवन को शुभ दिशा प्रदान करती है। यज्ञ में किया गया हवन केवल अग्नि में आहुति देना नहीं है, बल्कि यह मन, वाणी और कर्म की शुद्धि का प्रतीक है। जब मनुष्य यज्ञभाव से अपने जीवन के कार्य करता है, तो उसका जीवन सही अर्थ में फलदायी और सार्थक बनता है। इस प्रकार यज्ञ जीवन को अनुशासित, पवित्र और उद्देश्यपूर्ण बनाता है। यज्ञ में अग्नि को स्वाहा/स्वधा कहकर समर्पण किया जाता है यह समर्पण जीवन के दुखों, आग्रहों और कर्मों से मुक्ति का मार्ग खोलता है।

विवाह मण्डप में मंत्रोच्चारण द्वारा वातावरण मेंशुद्ध ऊर्जा, मंगलभाव तथा भक्तिका संचार होता है। यह प्रक्रिया वर-वधू के मन को संयम, दृढ़ता और धर्म के मार्ग पर स्थापित करती है।

"मन्त्रार्थं च यज्ञार्थं च, विवाहे विदितं भवेत्।
शुभाशुभविवेकं च, मन्त्रतुल्यं सम्पद्यते॥"

अर्थ:विवाह में मंत्रों का उच्चारण शुभ तथा अशुभ की विवेक शक्ति प्रदान करता है; व्यक्ति के आत्मसंयम और उच्च विचारों का विकास करता है। विवाह में प्रयुक्त मंत्रों और यज्ञ के अर्थ को समझना आवश्यक है। केवल मंत्रों का उच्चारण ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उनके भाव और उद्देश्य को जानना भी जरूरी है। जब व्यक्ति मंत्र और यज्ञ के वास्तविक अर्थ को समझकर विवाह संस्कार करता

है, तो उसमें शुभ और अशुभ का सही विवेक उत्पन्न होता है। इस प्रकार मंत्रों का ज्ञान स्वयं एक मार्गदर्शक बन जाता है, जो वैवाहिक जीवन को सही दिशा और संतुलन प्रदान करता है।

मण्डप में अग्नि का महत्व

वैदिक परम्परा में विवाह केवल सामाजिक मिलन नहीं, बल्किएक पवित्र यज्ञहै। इस यज्ञ का केन्द्र होता हैमण्डपऔर मण्डप में स्थापितअग्नि। अग्नि न केवल दम्पत्ति के जीवन की साक्षी होती है, बल्कि उनके जीवन में धर्म, नैतिकता और स्थायित्व का प्रतीक भी है। वैदिक मंत्रों में कहा गया है:

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥"

अग्नि यज्ञ का पुरोहित है, देवताओं को आह्वान करती है और सम्पूर्ण संस्कारों की साक्षी बनती है।

मण्डप में अग्नि का महत्व कई दृष्टियों से है। यह दम्पत्ति के जीवन मेंसत्य, धर्म और नैतिकताका प्रतीक है। अग्नि के चारों ओर वर-वधू सप्तपदी लेते हैं, जिससे उनका जीवन पवित्रता, स्थायित्व और सहयोग पर आधारित होता है। अग्नि केवल धार्मिक अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं, बल्किजीवन का मार्गदर्शनभी है। इसका प्रकाश अज्ञानता को दूर कर ज्ञान और शुभता का संदेश देता है। मण्डप में अग्नि की उपस्थिति यह स्मरण कराती है कि विवाह सिर्फ उत्सव नहीं, बल्कि जीवन भरकर्तव्य, निष्ठा और धार्मिकताका संकल्प है। इस प्रकार, मण्डप में अग्नि का होना विवाह संस्कार का अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र अंग है।

सप्तपदी:

मण्डप में सप्त पदी का विशेष महत्व है विवाह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान हैसप्तपदी जिसमें वर-वधू सात पग लेते हैं और सात प्रण (संकल्प) करते हैं। ये प्रण जीवन के सर्वाधिक आवश्यक तत्वों का संयोजन हैं।

"एकं पादं धर्माय, द्वे पादं अर्थाय।
त्रि पादं कामाय, चत्वारि लोकेषु हिताय॥
पञ्च पादं शान्त्यै, षट पादं आयुष्मन्तो भवेत्।
सप्त पादं मित्रस्य कल्याणार्थं च व्रतम्॥"

प्रथम पद - धर्म का अंगीकार
द्वितीय पद- परिवार व जीवन-कर्तव्यों का निर्वाह
तृतीय पद- प्रेम, सौहार्द तथा आनंद की प्राप्ति

चतुर्थ पद - समाज में हितकारी व्यवहार
पांचवां पद - शांति का स्थापना
छठा पद- दीर्घायु एवं कल्याण
सातवाँ पद- मित्रता, सहयोग तथा परस्पर सौहार्द
इस प्रकार सप्तपदी केवल संस्कार नहीं, अपितु जीवन के संचालन का विवेक-पूर्ण मार्गदर्शन है।

कलश, नारियल, पुष्प और दीप का महत्व-

विवाह मण्डप को सजाने में प्रयुक्त प्रतीकात्मक सामग्री-कलश, नारियल, पुष्प, दीप, रंगोली आदि के सभी के शास्त्रीय अर्थ हैं:

"कलशं पूजयेत् सर्वत्र, नार्यैः पुष्पैः सह शुभम्।
दीपं यत्र प्रकाशितं, तत्र जीवनं मंगलते॥"

अर्थ:कलश का पूजन शुभ है; पुष्पों से सजाना मंगलकारी है और प्रकाशित दीप जीवन में शुभता लाता है। हर शुभ कार्य में कलश की पूजा की जाती है,जिसमें स्त्रियाँ पुष्प अर्पित करती हैं। कलश समृद्धि, पूर्णता और मंगल का प्रतीक माना जाता है। जिस स्थान पर दीपक प्रज्वलित रहता है, वहाँ अज्ञान का अंधकार दूर होता है और सकारात्मकता फैलती है। इसलिए कहा गया है कि जहाँ कलश की पूजा और दीप का प्रकाश होता है, वहाँ जीवन में सुख, शांति और मंगल बना रहता है। यह श्लोक शुभ वातावरण के महत्व को सरल रूप में बताता है।

कलश-जीवन की समृद्धि,
नारियल-समर्पण व शुद्धता,
पुष्प-सौंदर्य व सौम्यता,
दीप-ज्ञान व प्रकाश के प्रतीक हैं।

विवाह मण्डप का सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व

सामाजिक मिलन का स्थल

विवाह मण्डप वह स्थान है जहाँ विविध आयु, विविध पारिवारिक पृष्ठभूमि और सामाजिक समूह एकत्रित होते हैं। यहसांस्कृतिक एकता, सौहार्द और समाजिक बंधुत्वका प्रतीक है।

"समाजः संस्कृत्या युक्तः, विवाहे प्रकाशितः सदा।
मण्डपः तस्य प्रतिनिधि, सौहार्दं विधायते मनः॥"

अर्थःसमाज संस्कृतिअनुरूप होता है; विवाह उसकी प्रकाशक प्रक्रिया है; मण्डप सौहार्द का प्रतिनिधित्व करता है। समाज का सौंदर्य और स्थायित्व उसकी संस्कृति और संस्कारों में निहित होता है,और विवाह इस संस्कृति को जीवंत करने का प्रमुख अवसर है। विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्कि परिवार और समाज के बीच सामंजस्य और सौहार्द का प्रतीक है। इसी संदर्भ मेंमण्डप विवाह का प्रतिनिधि स्थान होता है,जहाँ सामाजिक और धार्मिक संस्कारों के माध्यम से परिवार, मित्र और समुदाय एकत्र होकर दम्पत्ति को आशीर्वाद देते हैं। मण्डप केवल भौतिक ढांचा नहीं, बल्कि मन और भावनाओं का केन्द्र है। यह विवाह के दौरान सौहार्द, सहयोग और प्रेम की भावना को विकसित करता है। इसलिए कहा गया है किमण्डप के माध्यम से न केवल संस्कार संपन्न होते हैं, बल्कि समाज में सौहार्द और प्रेम का वातावरण भी स्थापित होता है।

संस्कारों की शिक्षा

विवाह मण्डप में सम्पन्न संस्कार पीढ़ियों तकधर्म, संस्कृति, आदर्श तथा जीवन के मूल्योंको स्थानांतरित करता है। यहाँ ‘कर्म’ का महत्व, ‘कर्तव्य’ का अनुसरण, व ‘समर्पण’ की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है।

“संस्कारैः जीवनं भूष्यते, मण्डपे तु संकल्पितम्।
पीढ्यैः पीढ्यः समागतं, धर्ममार्गं विधायते॥”

अर्थःसंस्कारों से जीवन सुशोभित होता है; मण्डप से सिद्ध संस्कार पीढ़ियों तक धर्ममार्ग का अनुसरण प्रदान करते हैं। मनुष्य का जीवन संस्कारों से सजता और पूर्ण होता है,और विवाह मण्डप इसका विशेष स्थान है। मण्डप केवल एक स्थल नहीं, बल्कि वह पवित्र क्षेत्र है जहाँ दम्पत्ति अपने जीवन के नए अध्याय की नींव रखते हैं। यहाँ पीढ़ियों की परम्पराएँ और अनुभव एकत्रित होकर, नए दम्पत्ति के जीवन में धर्म, कर्तव्य और नैतिक मूल्यों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मण्डप में सम्पन्न प्रत्येक संस्कार -जैसे पाणिग्रहण, कन्यादान और सप्तपदी जीवन में अनुशासन, सहयोग और सामाजिकसांस्कृतिक जिम्मेदारी का संदेश देता है। इस प्रकार मण्डप वह स्थान है जो-संस्कारों के माध्यम से दम्पत्ति के जीवन को सजाता और उन्हें धर्म के मार्ग पर अग्रसर करता है।

बोध प्रश्न-

1. मण्डप आच्छादन का मुख्य उद्देश्य क्या होता है?
A) केवल सजावट करना
B) मण्डप को पवित्र और मंगलकारी बनाना

C) अतिथियों को आकर्षित करना

D) स्थान को ढकना

2. मण्डप की छत और सजावट को क्या कहा जाता है?

A) वेदी

B) यज्ञ

C) आच्छादन

D) अग्नि

3. मण्डप आच्छादन में दीपक का क्या महत्व है?

A) केवल प्रकाश के लिए

B) अज्ञान और अंधकार दूर करने के लिए

C) सजावट बिगाड़ने के लिए

D) गर्मी देने के लिए

4. मण्डप आच्छादन में सामान्यतः किसका उपयोग किया जाता है?

A) प्लास्टिक और कागज

B) फूल, वस्त्र और दीपक

C) लोहे की चादर

D) कंक्रीट

5. मण्डप सजावट में कौन-सा रंग शुभ माना जाता है?

A) काला

B) सफेद

C) लाल

D) धूसर

6. मण्डप का आच्छादन किस भावना को दर्शाता है?

A) दिखावा

B) अव्यवस्था

C) पवित्रता और सौहार्द

D) प्रतिस्पर्धा

5.5 सारांश

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्किएक पवित्र संस्कारऔर सामाजिक अनुष्ठान है। इस संस्कार का केन्द्रविवाह मण्डपहोता है। मण्डप न केवल विवाह का स्थल है, बल्कि यह जीवन के मूल्यों, संस्कारों और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों का भी प्रतिनिधित्व करता है। विवाह मण्डप काआच्छादन (छत और सजावट)विवाह के महत्व, उसकी पवित्रता और मंगलता को दर्शाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।मण्डप का आच्छादन केवल भव्यता के लिए नहीं किया जाता, बल्कि इसका गहराआध्यात्मिक अर्थहै। वैदिक परम्परा में मण्डप के मध्य में अग्नि स्थापित की जाती है, जो दम्पत्ति के जीवन का मार्गदर्शन करती है। फूल, कपड़े, दीपक, कलश और अन्य सजावटी तत्वसकारात्मक ऊर्जाका संचार करते हैं। यह वातावरण दम्पत्ति और उपस्थित लोगों के मन मेंशांति, श्रद्धा और अनुशासनका भाव उत्पन्न करता है। आच्छादन यह दर्शाता है कि विवाह केवल भौतिक मिलन नहीं, बल्कि जीवन में धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों का आरम्भ है। मण्डप की सजावट समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब होती है। प्रत्येक रंग, फूल और वस्तु का विशेष महत्व होता है। उदाहरण के लिए, लाल और पीले रंग को शुभ और मंगलकारी माना जाता है, जबकि दीपक अज्ञानता को दूर कर ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक हैं। मण्डप का आच्छादन उपस्थित सभी लोगों मेंसौहार्द, सामाजिक एकता और सांस्कृतिक परंपराका संदेश फैलाता है। यह दर्शाता है कि विवाह व्यक्तिगत मिलन नहीं, बल्कि दो परिवारों और समाज का भी मिलन है। मण्डप की सजावट उपस्थित लोगों के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर भी गहरा प्रभाव डालती है। सुंदर और व्यवस्थित मण्डपउत्साह, आनंद और गरिमाकी भावना उत्पन्न करता है। यह दम्पत्ति के लिए यादगार अनुभव बनता है और अतिथियों के मन में भी समारोह का सकारात्मक प्रभाव छोड़ता है। आच्छादन विवाह स्थल कोपवित्र और मंगलकारीबनाकर सभी के लिए आनंदमय अनुभव सुनिश्चित करता है।

आज के समय में विवाह समारोह अधिक भव्य और तकनीकी सजावट से सम्पन्न होते हैं। फिर भी, वैदिक दृष्टि से मण्डप का आच्छादन पारंपरिक तत्वों जैसे फूल, कलश, दीपक और वस्त्रों से होना चाहिए। आधुनिक तकनीक के माध्यम से इन्हें सजाया जा सकता है, जिससे विवाह स्थल आकर्षक होने के साथ-साथपरम्परा और आधुनिकता का संतुलनभी बना रहता है। मण्डप का आच्छादन केवल सजावट का माध्यम नहीं है। यहआध्यात्मिक ऊर्जा, सामाजिक सौहार्द, सांस्कृतिक प्रतीक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणाका संयोजन है। सुंदर और व्यवस्थित मण्डप वातावरण दम्पत्ति और अतिथियों के लिए पवित्र और मंगलकारी बनाता है। यह याद दिलाता है कि विवाह केवल उत्सव नहीं, बल्कि जीवन में धर्म, संस्कार और प्रेम का स्थायी प्रारम्भ है। इस प्रकार, मण्डप का आच्छादन विवाह समारोह की सफलता, स्मरणीयता और शुभता में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. B 2. C 3. B 4. B 5. C 6. C

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त पारिजात
2. मेलापक मीमांशा
3. मुहूर्त पारिजात
4. मुहूर्त गणपति
5. विवाह वृन्दावन

5.8निबन्धात्मक प्रश्न

1. मण्डपाच्छादन का विस्तृत परिचय दीजिये।

2. मण्डप के बिभिन्न अंगों का वर्णन कीजि।

इकाई 6 पाणिग्रहणसंस्कार विधि

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उदेश्य
6.3 विषय परिचय
6.4 पाणिग्रहण (विवाह) संस्कार की विधि तथा सामग्री सम्पाद्य
6.5 पाणिग्रहण संस्कार (कर्मकाण्ड पद्वति)
6.5.1 विवाह (पाणिग्रहण) संस्कार के प्रमुख विधियाँ
6.5.2 कन्यादान विधि
6.5.3 कन्यादानसङ्कल्पः
6.5.4 पाणिग्रहण (हाथ पकड़ना)
6.6 विवाहहोमः –
6.6.1 सप्तपदी –
6.6.2 सप्तपदीश्लोकाः-
6.6.3 वरोक्तानि पञ्चवाक्यानि-
6.6.4 सिन्दूरदानम्:-
6.6.5 स्विष्टकृद्धोमः-
6.7 शास्त्रीय आधार
6.8 बोधात्मक प्रश्न
6.9 सारांश
6.10 पारिभाषिक शब्दावली
6.11 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
6.12 सहायक पाठ्य सामग्री
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-223 शिक्षणोत्तरसंस्कार के द्वितीय खण्ड की षष्ठ इकाई है जिसका शीर्षक **"पाणिग्रहण संस्कार विधि" है** । विवाह संस्कार हिन्दू जीवन के सोलह संस्कारों में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है। इसमें पाणिग्रहण वह चरण है जहाँ वर कन्या का हस्तग्रहण कर जीवनसाथी के रूप में धर्म, अर्थ और काम की साधना का संकल्प करता है। यह संस्कार केवल सामाजिक अनुबंध नहीं, बल्कि वैदिक परम्परा में धार्मिक व आध्यात्मिक बंधन है। पाणिग्रहण का अभिप्रायविवाह संस्कार से है इसमें वर – वधु एक दुसरे का हाथ थामते हैं। पाणिग्रहण' दो शब्दों से मिलकर बना है-पाणि = हाथ ,ग्रहण = स्वीकार करना या पकड़ना, अतः पाणिग्रहण का शाब्दिक अर्थ है- हाथ को ग्रहण करना। धार्मिक एवं संस्कारात्मक अर्थ में पाणिग्रहण वह वैदिक विधि है, जिसमें विवाह के समय वर वधू के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसे जीवनसंगिनी के रूप में स्वीकार करता है तथा धर्म, अर्थ और काम में जीवनभर साथ निभाने का संकल्प करता है। वर द्वारा मर्यादा स्वीकारोक्ति के बाद कन्या अपना हाथ वर के हाथ में सौंपे और वर अपना हाथ कन्या के हाथ में सौंप दे। इस प्रकार दोनों एक दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। यह क्रिया हाथ से हाथ मिलाने जैसी होती है। मानों एक दूसरे को पकड़कर सहारा दे रहे हों। कन्यादान की तरह यह वर-दान की क्रिया तो नहीं होती, फिर भी उस अवसर पर वर की भावना भी ठीक वैसी होनी चाहिए, जैसी कि कन्या को अपना हाथ सौंपते समय होती है। वर भी यह अनुभव करें कि उसने अपने व्यक्तित्व का अपनी इच्छा, आकांक्षा एवं गतिविधियों के संचालन का केन्द्र इस वधू को बना दिया और अपना हाथ भी सौंप दिया। दोनों एक दूसरे को आगे बढ़ाने के लिए एक दूसरे का हाथ जब भावनापूर्वक समाज के सम्मुख पकड़ लें, तो समझना चाहिए कि विवाह का प्रयोजन पूरा हो गया। इस प्रकार विवाह ("पाणिग्रहण) संस्कार विधि का हम विस्तारपूर्वक अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत करेंगे।

6.2 उदेश्य

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर्मकाण्ड के संस्कारों के महत्व और उसके प्रयोजन के विषय में बोध कर सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में हम जानेगे कि पाणिग्रहणसंस्कार की विधि क्या है तथा इसके महत्व से भी परिचित हो सकेंगे।
- ❖ विवाह संस्कार की वैदिक विधि क्या है बोध हो सकेगा।

❖ साथ ही इस संस्कार का वैदिक स्वरूप क्या था और आज के परिप्रेक्ष्य में क्या स्थिति है इसका बोध हो सकेगा।

6.3 विषय परिचय

सनातनी वैदिक परम्परा में प्रचलित प्रमुखत: सोलह संस्कारों का विशेष महत्व है। इन्हीं संस्कारों में से एक प्रमुख संस्कार विवाह संस्कार है। विवाह के अंतर्गत होने वाले विभिन्न कर्मकांडों में पाणी ग्रहण संस्कार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह संस्कार वर–वधू के जीवनभर के दाम्पत्य संबंध की विधिवत स्वीकृति और पवित्र बंधन का प्रतीक माना जाता है। जैसे कि आपको विदित होगा कि पाणिग्रहण का क्या अर्थ है - 'पाणी' का अर्थ हैहाथऔर 'ग्रहण' का अर्थ हैस्वीकार करना। अर्थात्वर द्वारा वधू के हाथ को अपने हाथ में लेकर जीवनभर साथ निभाने का संकल्प करना ही पाणी ग्रहण संस्कार कहलाता है। यह संस्कार विवाह की मुख्य विधियों में से एक है। पाणिग्रहण संस्कार विवाह का प्रमुख अंग है, जिसमें वर कन्या का हाथ पकड़कर जीवनभर साथ निभाने की प्रतिज्ञा करता है। यह संस्कार वैदिक मंत्रों, अग्नि की साक्षी और गुरुजन/समाज की उपस्थिति में सम्पन्न होता है

6.4 पाणिग्रहण (विवाह) संस्कार की विधि तथा सामग्री सम्पाद्य

सनातनी परम्परा में विवाह संस्कार में देव पूजन, यज्ञ आदि से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाएँ पहले से बनाकर रखनी चाहिए। सामूहिक विवाह हो, तो प्रत्येक जोड़े के हिसाब से प्रत्येक वेदी पर आवश्यक सामग्री रहनी चाहिए, कमर्काण्ड ठीक से होते चलें, इसके लिए प्रत्येक वेदी पर एक-एक जानकार व्यक्ति भी नियुक्त करना चाहिए। एक ही विवाह है, तो आचार्य स्वयं ही देख-रेख रख सकते हैं। सामान्य व्यवस्था के साथ जिन वस्तुओं की जरूरत विशेष कमर्काण्ड में पड़ती है, उन पर प्रारम्भ में दृष्टि डाल लेनी चाहिए। उसके सूत्र इस प्रकार हैं। वर सत्कार के लिए सामग्री के साथ एक थाली रहे, ताकि हाथ, पैर धोने की क्रिया में जल फैले नहीं। मधुपर्क पान के बाद हाथ धुलाकर उसे हटा दिया जाए। यज्ञोपवीत के लिए पीला रंगा हुआ यज्ञोपवीत एक जोड़ा रखा जाए। विवाह घोषणा के लिए वर-वधू पक्ष की पूरी जानकारी पहले से ही नोट कर ली जाए। वस्त्रोपहार तथा पुष्पोपहार के वस्त्र एवं मालाएँ तैयार रहें। कन्यादान में हाथ पीले करने की हल्दी, गुप्तदान के लिए गुँथा हुआ आटा (लगभग एक पाव) रखें। ग्रन्थिबन्धन के लिए हल्दी, पुष्प, अक्षत, दुर्वा और द्रव्य हों। शिलारोहण के लिए पत्थर की शिला या समतल पत्थर का एक टुकड़ा रखा जाए। हवन सामग्री के अतिरिक्त लाजा (धान

की खीलें) रखनी चाहिए। वर-वधू के पद प्रक्षालन के लिए परात या थाली रखे जाए। पहले से वातावरण ऐसा बनाना चाहिए कि संस्कार के समय वर और कन्या पक्ष के अधिक से अधिक परिजन, स्नेही उपस्थित रहें। सबके भाव संयोग से कमर्काण्ड के उद्देश्य में रचनात्मक सहयोग मिलता है।

6.5 पाणिग्रहण संस्कार (कर्मकाण्ड पद्धति)

विवाह संस्कार में कई महत्वपूर्ण चरण होते हैं, जिनमें अग्नि की स्थापना, कन्यादान, पाणिग्रहण, सप्तपदी, और लाजा होम प्रमुख हैं, जो वैदिक मंत्रों के साथ संपन्न होते हैं, जैसे "गृभ्णामि ते सुप्रजास्त्वाय हस्तं" (हाथ पकड़ते हुए) और सप्तपदी के दौरान "सखा सप्तपदा भव" (साथ-साथ सात कदम चलना), जो पति-पत्नी के बीच प्रेम, जिम्मेदारी, और एक-दूसरे के प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा का प्रतीक हैं, जिससे एक आदर्श गृहस्थ जीवन की नींव रखी जाती है। यहाँ हम कन्यादान विधि से शुरू करते हैं।

6.5.1 विवाह (पाणिग्रहण) संस्कार के प्रमुख विधियाँ

सर्वप्रथम विवाह मण्डप के समीप यज्ञ कुण्ड का निर्माण कर गणपत्यादि देवताओं का पूजन कर अग्नि स्थापना (पवित्र अग्नि की स्थापना) करनी चाहिए। यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की जाती है।तथा वैदिक लौकिक पद्वतियों से आहुतियाँ दी जाती हैं।

6.5.2 कन्यादान विधि

कन्या के पिता वर को अपनी पुत्री सौंपते हैं, जिसके साथ यह मंत्र पढ़ा जाता है: "गृभ्णामि ते सुप्रजास्त्वाय हस्तं..." (मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, ताकि हम सुयोग्य संतान उत्पन्न कर सकें)।

<u>**कन्या प्रार्थना**</u>

ॐ कन्यां कनकसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम्। दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥ १ ॥ गौरीं कन्यां सुशीलां च यथाशक्ति विभूषिताम्। कन्यार्थिने श्रीवराय तभ्यं दत्तां समाश्रय ॥ २ ॥ कन्ये मयाग्रतो भूयाः कन्या मे देवि पार्श्वयोः। कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम् ॥ ३॥ मम वंशकुले जाता पालिता बहुवत्सरम्। तुभ्यं वर मया

दत्ता पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥ विश्वम्भरः सर्वभूताः साक्षिण्यः सर्वदेवताः । इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च ॥५॥

उत्तरमुख कन्या का पिता, पश्चिममुख कन्या के दक्षिण हाथ के अंगूठे को पकड़कर पूर्वमुख वर के दाहिने हाथ में देकर शुभलग्न में कन्या का संकल्प करें। कांस्यपात्र में पत्नी के हाथ से निरन्तर जलधार गिरवाता रहे।

6.5.3 कन्यादानसङ्कल्पः

कन्यादान करनेवाला पिता अथवा भाई अपनी धर्मपत्नी के साथ वर के दाहिनी ओर बगल में बैठे। आचार्य उनसे आचमन और प्राणायाम करवाके शंख में दूर्वा, अक्षत, पुष्प, चन्दन और जल भरवाकर फिर कन्या का दाहिना हाथ जामाता अर्थात् वर के दाहिने हाथ में रखवाकर निम्न श्लोक का उच्चारण करें-

ॐ दाताऽहं वरुणो राजा द्रव्यमादित्यदैवतम् । वरोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः ॥

आचार्य कन्यादान का निम्न संकल्प कन्या के पिता या भाई से करावें -

देशकालौ संकीर्त्य, गोत्रः सपत्नीकोऽहम् अमुक- गोत्रस्यामुकप्रवरस्य शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिन- शाखाऽध्यायिनोऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकगोत्रस्या- मुकप्रवरस्य शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनशाखाऽध्या- यिनोऽमुकशर्मणः पौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनशाखाऽध्यायिनोऽमुक- शर्मणः पुत्राय आयुष्मते श्रीधररूपिणे कन्याथिनेऽमुक- गोत्रायामुकप्रवरायामुकशर्मणे वराय, कन्यापक्षे तु- प्रपौत्रीम्, पौत्रीम्, पुत्रीम् एवं गोत्रप्रवरपूर्वकं प्रपिता- महादीनामकन्यावरनामान्तमुपर्युक्तं वारत्रयं पठित्वा, झाखाऽध्यायिनोऽमुकशर्मणः पुत्रीमायुष्मतीं श्रीरूपिणीं अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिन- वरार्थिनीम् अमुकनाम्नीम् इमां कन्यां सालङ्कारां यथाशक्त्यलङ्कृतां यथाशक्त्युपकल्पितयौतकयुतां प्रजापतिदैवतां पुराणोक्तशतगुणीकृतज्योतिष्टोमाति- रात्रसमफलप्राप्तिपूर्वकं मम समस्तपितॄणां निरति- शयानन्द- ब्रह्मलोककन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तिपूर्वकं च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये अनेन वरेण अस्यां कन्यायाम् उत्पादयिष्यमाणसन्तत्या द्वादशावरान् द्वादश परान् पुरुषान् आत्मानं च

पवित्रीकर्तुम् अस्याः कन्याया अनेन वरेण धर्मप्रजया उभयोर्वंशयोर्वृद्ध्यर्थं देवाऽग्निगुरुसन्निधौ अग्न्यादिसाक्षिकतया सहधर्माचरणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

संकल्प पूर्ण होने के पश्चात कन्या का पिता या उसका बड़ा भाई कन्या का दायाँ हाथ वर के दाहिने हाथ में रख दें। तदुपरान्त वर से आचार्य इस वाक्य का उच्चारण करावें- **ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु।** पुनः वर-**ॐ स्वस्ति।** यह कहे। तदुपरान्त कन्या का पिता निम्न श्लोकों का उच्चारण करके वर की प्रार्थना करें-

गौरीं कन्यामिमां पूज्य ? यथाशक्ति विभूषिताम्। गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥१

कन्ये ममाग्रतो भूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः। कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम्॥२

कन्या लक्ष्मीः समाख्याता वरो नारायणः स्मृतः । तस्मात्कन्याप्रदानेन कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥ ३ ॥त्रैलोक्यनाथ देवेश सर्वभूत दयानिधे। दानेनानेन सुप्रीतः सदा शान्ति प्रयच्छ मे॥ ४॥ कन्या मम कुले जाता पालिता वत्सरैः शुभैः। तुभ्यं पूज्य मया दत्ता पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥ ५ ॥ धर्मस्याचरणं सम्यक् क्रियतामनया सह। धर्मे चार्थे च कामे च यत्त्वं नातिचरे विभो ॥ ६ ॥

6.5.4 पाणिग्रहण (हाथ पकड़ना)

वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हैं। इसके लिए मंत्र: "गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं" (मैं सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ)। **"यस्त्वया धर्मश्चरितव्यः सोऽनया सह, धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयम्।"" ॐ ३ नातिचरामि" यह वर कहे।**

संकल्पः - ततः "कृतस्य कन्यादानकर्मणः साङ्गता- सिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं इदं सुवर्ण अग्निदैवतं अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे वराय दक्षिणात्वेन तुभ्यमहं सम्प्रददे"। यह कहकर दक्षिणा देवें। वर 'ॐ स्वस्ति' का उच्चारण करे और आचार्य निम्न मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके इस मन्त्र का जो नीचे हिन्दी में अर्थ दिया गया है। उसे वर से कहवायें-

ॐ कोऽदात्कस्माऽ अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥

अर्थात - कौन देता है? किसको देता है? काम देता है। काम को देता है। काम ही दाता है और काम ही प्रतिग्रहीता है। हे काम! इस प्रकार दाता और प्रतिग्रहीता दोनों में तुम्हारा ही स्वरूप होने से ले-देकर यह सर्वधनादि सब तो तुम्हारा ही है । यहाँ पर आचार से कन्यापिता और उनके बान्धव

यथाशक्ति यौतक रूप से सुवर्ण, रजत, ताम्र, पीतल के पात्र तथा गौ, महिषी, अश्व, शय्या, दासी, दास, ग्राम आदि वर-कन्या के लिए देवें। आचार्य इस मन्त्र का उच्चारण करें- ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनु पवमानो वा ॥ हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वां मन्मनसां करोतु । वर कन्या का हाथ पकड़कर उसका नाम लेवे और वेदी के दक्षिण दिशा की ओर मौन धारण किये हुए दृढ़ मनुष्य के कन्धे पर जल से भरा हुआ कलश अभिषेक पर्यन्त रखे। इसके बाद विवाह करानेवाले आचार्य वर कन्या का ग्रन्थिबन्धन करें। तत्पश्चात् कन्या का पिता वर और कन्या से कहे कि आप लोग आपस में एक-दूसरे को देख लें। जिस समय वर और कन्या एक-दूसरे को देखें, उस समय विवाह करानेवाले आचार्य निम्न ऋग्वेद के चार मन्त्रों का उच्चारण करें-

ॐ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥ सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वोविविदऽउत्तरः । तृतीयो- ऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ २ ॥ सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽदददग्नये। रयिञ्च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो ऽइमाम् ॥ ३ ॥

सा नः पूषा शिवतमामेरय सा नऽ ऊरू ऽउशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै ॥ ४ ॥

तद पश्चात -आचार्य कन्या के पिता से ब्राह्मण भोजन का संकल्प करवाने के उपरान्त निम्न भूयसीदक्षिणा का संकल्प करावें -सपत्नीकोऽहं कन्यादानकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं श्रीलक्ष्मीनारायणदेवताप्रीतये इमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यो नटनर्तकगायकेभ्यश्च विभज्य दास्ये।निम्न दो श्लोक का उच्चारण करके प्रार्थना करें-

"प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्-विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥ १ ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो-यज्ञ-क्रियादिषु" ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ २ ॥

तदुपरान्त तीन बार ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः का उच्चारण करें।

6.6 विवाहहोमः –

पहले वधू को आगे करके अग्नि की प्रदक्षिणा करवाके, उसके बाद वधू को दाहिनी ओर करके एक आसन पर वर को बैठाना चाहिए।

आचार्यवरणसंकल्पः - अद्य कर्तव्यविवाहहोमकर्मणि आचार्यकर्मकर्तुम् एभिर्वरणद्रव्यैः अमुकगोत्रममुक- शर्माणं ब्राह्मणम् आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे ।
संकल्प के उपरान्त वर अपने हाथ के जल को वरण किये हुए आचार्य के हाथ में देवे और आचार्य' ॐ वृतोऽस्मि' कहें। तदुपरान्त निम्न श्लोक का उच्चारण करके आचार्य की प्रार्थना करें-
"आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत !॥
ब्रह्मवरणसंकल्पः - अद्य कर्तव्यविवाहहोमकर्मणि कृताऽकृताऽवेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ।
संकल्प के बाद वर अपने हाथ के जल को वरण किये हुए ब्रह्मा के हाथ में देवे और ब्रह्मा 'ॐ वृतोऽस्मि' कहें। तदुपरान्त निम्न श्लोक का उच्चारण करके ब्रह्मा की प्रार्थना करें-
"यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ! ॥
नोट:- कुशकण्डिका के लिए कर्मकाण्ड कि अन्य पुस्तक का अवलोकन करें ।
आधारसंज्ञकद्वादशाहुतयः - तदनन्तर कुशा द्वारा ब्रह्मा का स्पर्श कर आचार्य निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते हुए बारह आहुतियों को क्रमानुसार प्रदान करावें -

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापते न मम ॥ १ ॥ (इति मनसा)।
ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम । (इत्याधारः) ॥ २ ॥
ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥
ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम । (इत्याज्यभागौ)। ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥ ५ ॥
ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम ॥ ६ ॥

ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम ॥ ७ ॥ (एता महाव्याहृतयः)

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवया- सिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषार्ट०सि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥

ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयव नो वरुणर्ट० रराणो वीहि मृडीकर्ट० सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीबरुणाभ्यां न मम ॥

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमया असि। अया नो वज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजर्ट० स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे न मम ॥

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं वज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । ते भिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वक्र्काः स्वाहा ।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ।।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधर्म वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ।। इदं वरुणायादित्यादितये न मम ।। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

राष्ट्रभृद्धोमः - ब्रह्मा के स्पर्श बिना निम्न बारह मन्त्रों का आचार्य उच्चारण करते हुए स्रुव से घृत द्वारा आहुति प्रदान करावें। स्रुवे में बचे हुए घृत का प्रोक्षणीपात्र में प्रत्येक मन्त्र के अन्त में त्याग करावें।

ॐ ऋताषाडूतधामान्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय न मम ।। १ ।।

ॐ ऋताषाडूतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यश्च न मम ।। २ ।।

ॐ सर्व० हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदर्ट० सर्ट० हिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय न मम ।। ३ ।।

ॐ सर्व० हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा। इदं मरीचिभ्यो ऽप्सरोभ्य आयुयो न मम ।।४।।

ॐ सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स न उड़दं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् । इदं सुषुम्णाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय न मम ।। ५ ।।

ॐ सुषुम्णः सूर्यरश्मिचन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्स- रसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यो न मम ।। ६ ।।

ॐ इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमिषिराय विश्ववचसे वाताय गन्धर्वाय न मम ।। ७ ।।

ॐ इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऽऊर्जे नाम ताभ्यः स्वाहा। इदमद्भ्योऽप्सरोभ्य अग्ध्यो न मम ।। ८ ८।। ।।

ॐ भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय वज्ञाय गन्धर्वाय न मम ॥ ९ ॥

ॐ भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्योऽप्स-रोभ्यस्तावाभ्यो न मम ॥ १० ॥

ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय न मम ॥ ११ ॥

ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्मामनोगन्धर्वस्तस्य ऽत्रऋक्सामान्य- प्सरस ऽएष्टयो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं ऋक्सामभ्यो ऽप्स- रोभ्य एष्टिभ्यो न मम ॥ १२ ॥

जयहोमः - आचार्य निम्न तेरह मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुव द्वारा घृत से होम करावें। सुवे में बचे हुए घृत का मन्त्र के अन्त में प्रोक्षणीपात्र में त्याग भी करावें

ॐ चित्तं च स्वाहा, इदं चित्ताय न मम ॥ १ ॥

ॐ आकूतं च स्वाहा, इदमाकूताय न मम ॥ 2 ॥

ॐ चित्तिश्च स्वाहा, इदं चित्त्यै न मम ॥ २ ॥

ॐ विज्ञातं च स्वाहा, इदं विज्ञाताय न मम ॥ ५ ॥

ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा, इदं विज्ञात्यै न मम ॥ ६ ॥

ॐ आकूतिश्च स्वाहा, इदमाकूत्यै न मम ॥ ४ ॥

ॐ मनश्च स्वाहा, इदं मनसे न मम ॥ ७ ॥

ॐ शक्वरीश्च स्वाहा, इदं शक्करीभ्यो न मम ॥ ८ ॥

ऽइदं ब्रह्म वश्ववचसे

ॐ दर्शश्च स्वाहा, इदं दर्शाय न मम ॥ ९ ॥

ॐ पौर्णमासं च स्वाहा, इदं ॐ पौर्णमासायन मम ॥ १० ॥

स ऽऊर्जा भ्यों न

ॐ बृहच्च स्वाहा, इदं बृहते न मम ॥ ११ ॥

ॐ रथन्तरश्च स्वाहा, इदं रथन्तराय न मम ॥ १२ ॥

ॐ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना- जयेषु । तस्मै विशः समनमन्त सर्बाः स ऽउग्रः स ऽह हव्यो बहह्य क्षेत्रं यज्ञाय बभूव स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय न मम ॥ १३ ॥

अभ्यातानहोमः - आचार्य निम्न अट्ठारह मन्त्रों का क्रम से उच्चारण करते हुए खुव द्वारा घृत से होम करावें। सुवे में बचे हुए घृत का मन्त्र के अन्त में प्रोक्षणीपात्र में त्याग भी करावें - ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥। इदमग्नये भूतानामधिपतये न मम ॥ १ ॥ ॐ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् कर्मणे ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याठ० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये न मम ॥ २ ॥ ॐ यमः पृथिव्या अधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याठ० स्वाहा ॥॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये न मम ॥ ३॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः - ॐ वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा- यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये न मम ॥ ४ ॥ ॐ सूर्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये न मम ॥ ५ ॥

ॐ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽ वत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणा- मधिपतये न मम ॥ ६ ॥

ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपातेः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधि- पतये न मम ॥ ७ ॥

ॐ मित्रः सत्यनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये न मम ॥ ८ ॥

ॐ वरुणोऽपामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽपामधिपतये न मम ॥ ९ ॥

ॐ समुद्रः स्त्रोत्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्त्रोत्यानामधिपतये न मम ॥ १० ॥ ७२९ स्वाहा ॥ इदं समुद्राय

ॐ अन्न० साम्राज्यानामधिपतिः स माऽवत्वम्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहत्याठ० स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्याना- मधिपतये न मम ॥ ११ ॥

ॐ सोम ओषधीनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याठ० स्वाहा ॥ इदं सोमाय ओषधीनामधिपतये न मम ॥ १२॥

ॐ सविता प्रसवानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये न मम ॥ १३ ॥

ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥॥ इदं रुद्राय पशूनामधिपतये न मम ॥ १४॥

अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः - ॐ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा- यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये न मम ॥ १५ ॥

ॐ विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं विष्णवे पर्वताना- मधिपतये न मम ॥ १६ ॥

ॐ मरुतो गणानामधिपतयस्ते माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्य- स्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यार्ट० स्वाहा ॥ इदं मरुभ्यो गणानामधिपतिभ्यो न मम ॥ १७ ॥

ॐ पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः । इह माऽवन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याठ० स्वाहा ॥ इदं पितृभ्यः पितामहेभ्य परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यो न मम ॥ १८ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ।

पञ्चाहुतयः - आचार्य निम्न चार मन्त्रों का क्रम से उच्चारण करते हुए स्रुव से घृत द्वारा चार आहुतियाँ प्रदान करावें। खुवावशिष्ट घृत का प्रोक्षणीपात्र में परित्याग भी करावें- ॐ अग्निरैतु प्रथमो देवतानाठ० सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयर्ट० राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री

पौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ ॐ इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमा- नन्दमभिविबुद्ध्यतामियठ० स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥ २॥

ॐ स्वस्ति नो अग्ने दिव आ पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रर्ठ० स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ ॐ सुगं नु पन्थां प्रदिशन्न ऽएहि ज्योतिष्मद्ध्येह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतन्न आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय न मम ॥ ४ ॥ (अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

अन्तः पटाहुतिमन्त्रः - पाँचवी आहुति के लिए वर और कन्या के मध्य में वस्त्र का परदा करके पाँचवी आहुति आचार्य प्रदान करावें - ॐ परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्यऽइतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजार्ट० रीरिषो मोत वीरान् स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे न मम ॥ ५ ॥

अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥ पाँचवी आहुति देने के उपरान्त प्रोक्षणीपात्र में स्रुवावशिष्ट घृत का परित्याग करते हुए प्रणीता के जल को अपने दोनों नेत्रों में लगावें।

कन्याकर्तृको लाजाहोमः- आचार्य वर-वधू को पूर्वाभिमुख खड़ा करवाकर वधू को उसके आगे कर, वर की अंजलि पर वधू की अंजलि रखकर उसमें वधू के भाई द्वारा चार मुट्ठी घृत और शमीपलाश मिले लावा द्वारा निम्न मन्त्र का उच्चारण करके अंजलि में दिये गए लावा में से तृतीयांश लावा का अग्नि में हवन करावें -ॐ अर्यमणं देवं कन्या अग्मियक्षत। स नो अर्य्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा ॥ ॐ इदमर्यणे न मम ॥ १ ॥

आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करके अवशिष्ट तृतीयांश लावे में से अर्धांश लावा का अग्नि में हवन करावें -ॐ इयं नार्य्यपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा ॥ ॐ इदमग्नये न मम ॥ २ ॥

पुनः आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करके सम्पूर्ण लावे का होम करवा दें-

ॐ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्य च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियर्ट० स्वाहा ॥ ॐ

इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥

वध्वङ्गुष्ठग्रहणम् - वर-वधू के दायें हाथ के अँगूठे को अपने दाहिने हाथ से पकडे. पकड़े, उस समय विवाह करानेवाले आचार्य निम्न चार मन्त्रों का उच्चारण करें- ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथाऽऽसः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वा ऽदुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ १ ॥

ॐ अमोऽहमस्मि सा त्वर्ट० सा त्वमस्यमो अहम्। सामाऽहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्॥ २ ॥

ॐ तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्द्यावहै बहून्॥ ३ ॥

ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतर्ट० श्रृणुयाम शरदःशतम्॥ ४ ॥

अश्मारोहणम् - अग्निदेवता के उत्तर पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू का आचार्य पहले से रखी हुई सिल पर दाहिना पैर रखवाकर इस मन्त्र का उच्चारण करें-

ॐ आरोहेममश्मानश्मेव त्वर्ठ० स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्य पृतनायतः ॥ १ ॥

आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करें- ॐ सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतर्ट० समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ २ ॥

वर-वधू को अपने आगे करे। तब आचार्य प्रणीता ब्रह्मासहित निम्न मन्त्र का उच्चारण कर अग्नि की परिक्रमा करावें -

ॐ तुभ्यमग्रे पर्य्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दाऽग्ने प्रजया सह ॥ ३ ॥

इसके बाद वेदी के पीछे खड़े होकर लाजाहोम, अँगूठे के साथ हस्तग्रहण, अश्मारोहण, गाथागान और वर-वधू दोनों की प्रदक्षिणा करें। इस प्रकार तीन बार प्रदक्षिणा करने से नवलाजाहुति, तीन बार वधू का हस्तग्रहण, तीन बार अश्मारोहण तथा तीन बार गाथागान पूर्ण होता है। इस क्रम द्वारा नवलाजाहुति पूर्ण होती है।

कन्या के भ्राता द्वारा अंजलि के बचे हुए लावे को वधू सूप के कोने से अग्नि में छोड़े, उस समय आचार्य - ॐ भगाय स्वाहा। इदं भगाय न मम ॥ इस नाममन्त्र द्वारा अग्नि में हवन करावें।

(अत्र सेवरादानमिति लोकाचारो मरुदेशीयानाम्)

अन्तःपटम् -: स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानं स्थाने स्थितः का पुरुषोऽपि धीरः। जानामि नागेन्द्र तव प्रभावं कण्ठे स्थितो गर्जसि शङ्करस्य ॥ १ ॥ गजर्येऽदा तृणवच्छेदनीयो दृष्ट्वा ब्रह्मा देवतानां च मुख्यः। पट्टमादत्त नूनम् ॥ २॥ वैरं मध्ये वैनतेयाहि राजं तयोरन्तः मण्डपे मधुपर्के यावत्कन्या च लाजहोमे तथैव च। न वामाङ्गे तावत्कन्या कुमारिका ॥ ३ ॥

चतुर्युगानि श्लोकाः- सत्ये युगे स्तम्भमया महाद्रयः उल्लोच आकाशमपां निधिर्घटः। हिरण्मयं पात्रमहो शुभाक्षता रत्नान्यभूत्कर्मठ आत्मभूः स्वयम् ॥१॥ गौरी च कन्या वर ईश्वरो बभौ स पुण्यकालो भवतात्सुमङ्गलम्। शान्ताः शिवाश्चाप इमाः पवित्रिता निवारयन्तु प्रसभं विपद्व्रजम् ॥२॥

गन्धर्वश्चैव तत्सर्वं दम्पती रक्षतात्सदा। गन्धर्वो देवतारूपआशीर्वाद ददातु नौ ॥ ३ ॥ त्रेतायुगे स्तम्भविधिर्हिरण्मयः पटैर्वितानं कलशश्च जाह्नवी। सुराजतं पात्रमयाक्षताः शुभा मुक्ता व्यधात्कृत्यमरुन्धतीपतिः ॥ १ ॥

सीता च कन्या रघुपुङ्गवो वरः स पुण्यकालस्तनुतात्सुमङ्गलम्। शान्ताः शिवाश्चाप इमाः पवित्रिता निवारयन्तु प्रसभं विपद्व्रजम् ॥ २ ॥ चित्तचित्तीति रक्षतात्पार्वतीरुद्रविश्वदेवैः तत्सर्वानाहुतीनां त्रयोदश। समन्विता ॥ ३ ॥ युगे वरे द्वापरनाम्नि चान्दनाः स्तम्भावितानं नवभूर्जपत्रकैः। ताम्रस्य पात्राणि सिताक्षताः शुभा मुक्ताः सुकन्या द्रुपदात्मजा बभौ ॥ १ ॥ वरः किरीटी जयतां वरः प्रभुर्दुर्वाससाऽभूयत सत्पुरोधसा। आनन्दसान्द्रः सुषमासमृद्धिमान् स पुण्यकालो बिभ्रियात्परां श्रियम्। शान्ताः शिवाश्चाप इमाः पवित्रिता निवारयन्तु प्रसभं विपद्व्रजम् ॥ २ ॥ गोविन्दो गोकुले जातः सहितो गोपबालकैः।

तुष्टि पुष्टिकरोऽस्माकमायुरारोग्यकारकः ॥

कलावमुष्मिन्हरिताः सुवेणवः स्तम्भा घटा मृत्तिकया विनिर्मिताः। कार्पासवस्त्रै रचितं वितानकं तथाऽक्षतास्तण्डुलविग्रहाः कृताः ॥ १ ॥ सुरूपिणो भानुमती च कन्यका श्रीभोजराजो धरणीश्वरो वरः। अमोघ आचार्य इति प्रसिद्धिमान् स पुण्यकालो रहयत्वमङ्गलम् ॥ २ ॥

चिरञ्जीवी महातेजा उभयोश्च चिरायुषम्। प्रयच्छतु हरिर्देवो मनसा चिन्तितं ध्रुवम् ॥ ३ ॥

6.6.1 सप्तपदी –

वर-वधू अग्नि के चारों ओर सात फेरे लेते हैं, और हर फेरे के साथ नए संकल्प लिए जाते हैं। मंत्र जैसे "सखा सप्तपदा भव" (तुम मेरे साथ सात कदम चलो, हम मित्र बनें) बोले जाते हैं, जो साथ चलने, सुख-दुःख बांटने और जीवन भर साथ रहने की प्रतिज्ञा है।

आचार्य अग्नि के उत्तर में आलेपन से उत्तर-उत्तर सात मण्डल का निर्माण करें। उसी पर वधू से सात बार क्रमशः नीचे दिये गए मन्त्रों को पढ़ते हुए उससे पैर रखवायें-

तत्र प्रथमे - ॐ एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु ॥ १॥ द्वितीये - ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु ॥ २ ॥ तृतीये - ॐ त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु ॥ ३ ॥ चतुर्थे - ॐ चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु ॥ ४ ॥ पञ्चमे - ॐ पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ॥ ५ ॥ षष्ठे - ॐ षड् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ॥ ६ ॥ सप्तमे-ॐ सखे सप्त पदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु ॥ ७ ॥

6.6.2 सप्तपदीश्लोकाः-

कन्या उवाच- तीर्थव्रतोद्यापनदानयज्ञान् मया सह त्वं यदि कान्त कुर्याः । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत वाक्यं प्रथमं कुमारी ॥ १ ॥ हे पतिदेव ! तीर्थयात्रा, व्रतादि, उद्यापन, यज्ञादि और दानादि करने में यदि आप मुझे अपने साथ रखें। तभी मैं आपके वामभाग में आऊँगी ॥ १ ॥

हव्यदानैरमरान् पिंश्च कव्यप्रदानैर्यदि पूजयेथाः । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत कन्या वचनं द्वितीयम् ॥ २ ॥ यदि आप (पतिदेव) हव्य के द्वारा देवताओं को और कव्य के द्वारा पितरगणों को पूजित करें। तभी मैं आपके वामाङ्ग में आऊँगी ॥ २॥

कुटुम्बरक्षाभरणे यदि त्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च। वामाङ्गमायामि तदौ त्वदीयं भाषेत कन्या वचनं तृतीयम् ॥ ३॥ कुटुम्ब अर्थात् परिवार की रक्षा और उनका भरण-पोषण आप करें तथा गाय, बैल आदि पशुओं को अपने गृह में रखकर उनका पालन करे तो मैं आपके वामाङ्ग में आऊँ ॥ ३ ॥

आयव्ययौ धान्यधनादिकानां पृष्ट्वा गृहे चेदुचितं विदध्याः । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत कन्या वचनं चतुर्थम् ॥ ४॥ आय-व्यय, धन-धान्य आदि आप जो कुछ भी करें, मुझसे सदैव पूछकर ही करें तो, मैं आपके वामभाग में आऊँ ॥ ४ ॥

देवालयारामतडागमकूपवापीदिध्या अथ पूजयेथाः । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत सा पञ्चमवाक्यमेतत् ॥ ५ ॥ देवालय, वाटिका, कूप, वापी का यदि आप निर्माण करें तो, मैं आपके वामभाग में आऊँ ॥ ५॥

देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा यदि प्रकुर्याः क्रयविक्रयौ त्वम् । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत कन्या वचनं च षष्ठम् ॥ ६ ॥ हे पतिदेव ! यदि इस देश अथवा दूसरे देश में आप क्रय-विक्रय तथा धनोपार्जन करते रहें, तो मैं आपके वामभाग में आऊँ ॥ ६ ॥

नर न सेवनीया परपूर्विका स्यात्त्वया भवो भाविनि भामिनीति । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं भाषेत सा सप्तमवाक्यमेतत् ॥ ७ ॥ अत्यन्त प्रबल कामना होने पर ही आप मेरे अतिरिक्त अन्य स्त्री का सेवन न करें, तो मैं आपके वामभाग में आऊँ ॥ ७ ॥

6.6.3 वरोक्तानि पञ्चवाक्यानि-

वर उवाच -: क्रीडा-शरीर-संस्कार-समाजोत्सव-दर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ॥१॥

वरोक्तानि पञ्चवाक्यानि वर उवाच- क्रीडा-शरीर-संस्कार-समाजोत्सव-दर्शनम् हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ॥ १ ॥

हे प्रिये! मेरे घर न रहने के समय क्रीड़ा, श्रृंगार, सामाजिक कार्य, देव- दर्शन, हँसी-मजाक, दूसरे के घर जाना आदि पति के दूसरे देश चले जाने पर उसके न आने तक पतिव्रता स्त्री को कदापि (उपरोक्त कार्य) नहीं करना चाहिए। अतः मैं भी तुमको उपरोक्त नियमों का पालन करने हेतु सदैव सचेष्ट रहने की आज्ञा देता हूँ ॥ १ ॥

विष्णुर्वैश्वानरः साक्षी ब्राह्मण-ज्ञाति-बान्धवाः । पञ्चमं ध्रुवमालोक्य स साक्षि त्वं ममागता ॥ २ ॥

हे देवि । तुम्हारे साथ मेरे इस विवाह में भगवान् विष्णु, अग्नि, ब्राह्मणगण, बन्धु-बान्धवगण और पाँचवें ध्रुवनक्षत्र साक्षी अर्थात् प्रमाण के रूप में हैं। अतः इनके साक्षित्व में आज से तुम मेरी (धर्म) पत्नी हो ॥ २ ॥तव चित्तं मम चित्तं वाचा वाच्य न लोपयेत्। व्रते मे सर्वदा देयं हृदयं स्वं वरानने ॥ ३॥ हे वरानने ! तुम इसी समय से अपना चित्त मेरे चित्त के अनुरूप रखना, और मेरी उचित आज्ञा का (कदापि) उल्लंघन मत करना। मैं जो कुछ भी तुमसे कहूँ, उसे अपने मन में ही रखना तथा मेरे नियम

के अनुकूल ही अपने हृदय को (सदैव) रखना ॥ ३ ॥ मम तुष्टिश्च कर्तव्या बन्धूनां भक्तिरादरात् । ममाऽऽज्ञा परिपाल्यैषा पतिव्रतपरायणे ! ॥ ४ ॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारा (यह) मुख्य कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार मुझे प्रसन्नता प्राप्त हो, उसी प्रकार (तुम) कार्य करना तथा (मेरे) भाई-बन्धुओं के विषय में सम्मानपूर्वक भाव रखना और सदैव मेरी आज्ञा का पालन करना ॥ ४ ॥ विना पत्नी कथं धर्म आश्रमाणां प्रवर्त्तते। तस्मात् त्वं मम विश्वस्ता भव वामाङ्गगामिनी ॥ ५ ॥ हे सुमुखि ! इस गृहस्थाश्रम धर्म का पालन पत्नी के बिना कदापि सम्भव नहीं हो सकता, इसलिए तुम मेरी विश्वासपात्र वामाङ्गी और सधर्मिणी बनो ॥ ५ ॥ उपरोक्त पाँचों श्लोकों को विवाह करानेवाले आचार्य कहें और उसका अर्थ भी कन्या को बतावें। कन्या केवल अपनी स्वेच्छा से स्वीकृति प्रदान करे। मन्त्ररूपी वाक्यों का उच्चारण करें- ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि । मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुष्स्व । प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।

6.6.4 सिन्दूरदानम्:-

जिस समय कन्या अपने पति के वामाङ्ग में आती है, उस समय सिन्दूरदान होता है। सिन्दूरदान सुवर्ण की मुद्रिका (अँगूठी) द्वारा, चाँदी के सिक्के द्वारा या वर अपने दायें हाथ की अनामिका अंगुली के द्वारा सिन्दूरदान करें। जैसी कुलप्रथा हो, वैसा ही करना चाहिए। सिन्दूरदान के समय जिस समय वर कन्या की माँग को भरे, उस समय आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करें- **ॐ सुमङ्गलीरियं वधूरिमार्ट० समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथाऽस्तं विपरेत न ॥** वधू की माँग भरने के पश्चात् वह वर के वामभाग में बैठे, ऐसा भी लोकाचार है कि वर के माँग भरने के पश्चात् चार सौभाग्यवती स्त्रियाँ वधू की माँग में 'अखण्ड सौभाग्यवती भव' कहकर अच्छी प्रकार से उसकी माँग में सिन्दूर लगावें।

कन्यावरयोर्ग्रन्थिबन्धनम्:- आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करके वर-कन्या का ग्रन्थिबन्धन करें-

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धयासत्यमाप्यते ॥

तदुपरान्त आचार्य वर-वधू दोनों को कोहबर में ले जाकर कुशा के आसन पर बैठाकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करें-

ॐ इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा ऽइह पूरुषाः। इह सहस्रदक्षिणो यज्ञ ऽइह पूषा निषीदन्तु ॥

6.6.5 स्विष्टकृद्धोमः-

विवाह करानेवाले आचार्य वर-वधू को मण्डप में लाकर कुश से ब्रह्मा का स्पर्श करवाते हुए 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' का उच्चारण कर वर से एक आहुति घृत से प्रदान करवाकर पुनः 'इदमग्नये स्विष्टकृते न मम' का उच्चारण करवाकर सुवे में बचे हुए घृत का प्रक्षेप प्रोक्षणीपात्र में करवाकेप्रोक्षणीपात्र में छोड़े हुए घृत का प्राशन वर से करवाकर आचमन करावें। आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण कर वर के मस्तक पर जल छिड़कें - ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। इस कर्म के पश्चात् उन कुशों को अग्नि में छोड़ दें।

- **ब्रह्मणेपूर्णपात्रदानसंकल्पः -** वरो दक्षिणहस्ते जलाऽक्षत- द्रव्यं चादाय संकल्पं कुर्यात् - ॐ अद्य कृतैतद्- विवाहहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपकर्मप्रतिष्ठार्थम् इदं पूर्णपात्रं स-दक्षिणाकं प्रजापतिदैवतम् अमुक- गोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे । ब्रह्मा पूर्णपात्र को वर से अपने दोनों हाथों में लेकर 'ॐ स्वस्ति' यह कहे।
- **आचार्यदक्षिणासंकल्पः -** वर अपने दाहिने हाथ में जल, अक्षत और पुष्प लेकर यह संकल्प करें-देशकालौ सङ्कीर्त्य, कृतस्य विवाह- होमकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च आचार्याय मनसोद्दिष्टां दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये ॥ आचार्य ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्यिं च वयं द्विष्म ॥ इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए वर से प्रणीतापात्र को उलटवा दें । पुनः ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए उपयमन कुशा से मार्जन करवाकर उस कुशा को वर से अग्नि में छोड़वा दें।
- **त्र्यायुषकरणम् -** आचार्य सुव द्वारा होम की भस्म लेकर अनामिका अंगुली से ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः । इसका उच्चारण कर वर के ललाट में लगावे, पुनः ॐ कश्यपश्य त्र्यायुषम्। इसका उच्चारण कर वर के ग्रीवा में लगावे, तदुपरान्त ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्। इसका उच्चारण कर वर के दक्षिण बाहु में लगावें, तत्पश्चात् ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्। इसका उच्चारण कर वर के हृदय में लगावें। इसी प्रकार 'तन्नो' के स्थान पर 'तत्ते' का उच्चारण कर वधू को भी इसी क्रम से भस्म लगावें। इसके पश्चात् आचार्य घृत का छायापात्र दान करावें । विवाह-संस्कार में पूर्णाहुति नहीं होती है।
- **वरकृताभिषेकः-** वर अपने स्थान पर आकर बैठे और दृढ़ पुरुष के कन्धे पर स्थित कुम्भ को लेकर आम्रपल्लव से जल लेकर उस जल से वधू के सिर पर अभिषेक करें। उस समय आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करें-**ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥** पुनः उसी कलश के जल को लेकर आम्रपल्लव से वर अपने ऊपर छिड़कें। उस समय आचार्य निम्न तीन मन्त्रों का उच्चारण करे-

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन यथा च नः ॥ ३ ॥

- ❖ **दिवालग्ने सूर्यदर्शनम् -** यदि दिन में विवाह हो तो वर-वधू से 'सूर्यमुदीक्षस्व' अर्थात् सूर्य को देखो, ऐसा कहे। जिस समय वधू सूर्य को देखे, उस समय आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करें-ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतर्ट० श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं बूयश्च शरदः शतात् ॥
- ❖ **रात्रिलग्ने ध्रुवदर्शनम् -** यदि रात्रि का विवाह हो तो वर-वधू से 'ध्रुवमुदीक्षस्व' अर्थात् ध्रुवतारे को देखो, ऐसा कहे। जिस समय वधू ध्रुवतारे को देखे, उस समय आचार्य निम्न मन्त्र का उच्चारण करें - ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैषि पोष्ये मयि मह्यं त्वा अदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सञ्जीव शरदः शतम् ॥
- ❖ **हृदयालम्भनम् -** उपरोक्त कर्म के पश्चात् वर-वधू के दायें कन्धे से हाथ ले जावे और उसके हृदय का स्पर्श करें। उस समय आचार्य इन लाजा होम (धान की आहुति): वधू द्वारा धान (लाजा) की आहुति अग्नि में दी जाती है, जो अन्न, धन और समृद्धि की कामना के लिए होती है।
- ❖ **सिंदूरदानः-** वर, वधू की मांग में सिंदूर भरता है, जो वैवाहिक जीवन और सौभाग्य का प्रतीक है (इसकी विधि और मंत्र अलग से होते हैं)।
- ❖ **अग्निपरिक्रमाः-**सप्तपदी के बाद, जोड़े अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करते हैं, जिसमें वधू का दाहिना हाथ पति के हाथ में होता है।
- ❖ **शिलारोहणः-** एक पत्थर पर पैर रखकर, भावी जिम्मेदारियों को निभाने और बाधाओं को पार करने की प्रतिज्ञा की जाती है, इसके लिए मंत्र होते हैं।

महत्वपूर्ण मंत्र (उदाहरण): "ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयाऽ असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज * स्वाहा॥" (अग्निदेव से प्रार्थना)।

"धैर्यहं पृथिवीत्वम् । रेतोऽहं रेतोभृत्त्वम् । मनोऽहमस्मि वाक्त्वम् । सामाहमस्मि ऋकृत्वम् । सा मां अनुव्रता भव" (मैं आकाश हूँ और तुम पृथ्वी, मैं मन हूँ और तुम शब्द, तुम मेरा साथ दो)।

यह प्रक्रिया सभी देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने, एक-दूसरे के प्रति प्रतिबद्ध होने और एक समृद्ध, सुखी गृहस्थ जीवन जीने के लिए की जाती है।

6.7 शास्त्रीय आधार

पाणी ग्रहण संस्कार का उल्लेख ऋग्वेद, गृह्यसूत्रों और स्मृतियों में मिलता है। मनुस्मृति के अनुसार विवाह तभी पूर्ण माना जाता है, जब पाणी ग्रहण विधि संपन्न हो। वैदिक परंपरा में अग्नि को साक्षी मानकर किए गए संकल्प को अटल और पवित्र माना गया है। इस प्रकार पाणी ग्रहण संस्कार विवाह का केंद्रीय कर्मकांड है।

पाणी ग्रहण संस्कार की विधि

(क) मंडप एवं अग्नि स्थापना

विवाह मंडप को वैदिक रीति से सजाया जाता है। अग्नि की स्थापना की जाती है, जो देवताओं की साक्षी मानी जाती है। वर और वधू अग्नि के समक्ष बैठते हैं।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. पाणिग्रहण शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

(क) विवाह संपन्न करना

(ख) अग्नि की पूजा करना

(ग) हाथ को ग्रहण करना

(घ) कन्यादान करना

2. पाणिग्रहण संस्कार किस संस्कार के अंतर्गत आता है?

(क) उपनयन संस्कार

(ख) नामकरण संस्कार

(ग) विवाह संस्कार

(घ) अंत्येष्टि संस्कार

3. पाणिग्रहण संस्कार में वर वधू के किस हाथ को ग्रहण करता है?

(क) बाएँ हाथ को

(ख) दाएँ हाथ को

(ग) दोनों हाथों को

(घ) किसी भी हाथ को

4. पाणिग्रहण संस्कार में किसे साक्षी माना जाता है?

(क) सूर्य

(ख) चंद्र

(ग) अग्नि

(घ) जल

5. पाणिग्रहण संस्कार सामान्यतः किसके बाद किया जाता है?

(क) सप्तपदी के बाद

(ख) विदाई के बाद

(ग) कन्यादान के बाद

(घ) गृहप्रवेश के बाद

6. पाणिग्रहण के समय वर किस बात का संकल्प करता है?

(क) केवल आर्थिक सहयोग

(ख) केवल सामाजिक दायित्व

(ग) धर्म, अर्थ और काम में सहयोग

7. शास्त्रों के अनुसार पाणिग्रहण के बिना विवाह कैसा माना जाता है?

(क) पूर्ण

(ख) आधुनिक

(ग) अपूर्ण

(घ) अवैध

8. पाणिग्रहण संस्कार का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

(क) सामाजिक प्रदर्शन

(ख) धार्मिक यज्ञ

(ग) दाम्पत्य जीवन की स्वीकृति

(घ) पारिवारिक भोज

9. पाणिग्रहण संस्कार का उल्लेख मुख्यतः किन ग्रंथों में मिलता है?

(क) पुराण

(ख) उपनिषद

(ग) गृह्यसूत्र और वेद

(घ) रामायण

10. पाणिग्रहण संस्कार किस भावना का प्रतीक है?

(क) अधिकार

(ख) समानता एवं सहयोग

(ग) अनुशासन

(घ) परंपरा

6.9 सारांश

पाणिग्रहण संस्कार हिंदू विवाह का एक महत्वपूर्ण कर्मकांड है, जिसमें वर (दूल्हा) कन्या (दुल्हन) का दाहिना हाथ अपने हाथ में लेता है, जो जीवन भर के उत्तरदायित्वों, प्रेम और साथ निभाने के वचन का प्रतीक है, जिसके दौरान वैदिक मंत्रों का उच्चारण होता है और यह एकीकरण और मित्रता की भावना को दर्शाता है, जिसके बाद गठबंधन और सप्तपदी जैसे अन्य अनुष्ठान होते हैं। पाणिग्रहण संस्कार की विधि (कर्मकाण्ड) बैठने की व्यवस्था: दूल्हा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बैठता है, और दुल्हन पूर्व दिशा की ओर मुख करके उसके सामने बैठती है, यह ऊर्जा संतुलन के लिए होता है। मंत्रोच्चार: पंडित वैदिक मंत्रों का जाप शुरू करते हैं। हाथों का समर्पण: कन्या (दुल्हन) अपना दाहिना हाथ वर (दूल्हे) के हाथ में देती है। वर उस हाथ को अपने दाहिने हाथ से पकड़ता है, जिसमें अँगूठा भी शामिल होता है। भावनात्मक एकात्मता: इस क्रिया के दौरान, वर-वधू यह भावना करते हैं कि वे एक-दूसरे के जीवन के उत्तरदायित्वों, सुख-दुख और आकांक्षाओं को स्वीकार कर रहे हैं। वचन: वर यह वचन देता है कि वह जीवनभर वधू का साथ देगा, उसकी रक्षा करेगा और उसे सम्मान देगा। वधू भी पति के साथ जीवनभर सहर्ष रहने का संकल्प लेती है। गठबंधन: वर के कंधे पर पड़े दुपट्टे और वधू की साड़ी के पल्ले के बीच एक गाँठ (ग्रंथि) बांधी जाती है, जिसमें सिक्का, फूल, हल्दी, दूर्वा और अक्षत रखे जाते हैं, जो धन, खुशी, स्वास्थ्य और दीर्घायु का प्रतीक हैं। सप्तपदी: पाणिग्रहण के बाद अग्नि के चारों ओर सात फेरे (सप्तपदी) लिए जाते हैं, जो वैवाहिक जीवन के सात प्रमुख वचनों और प्रतिज्ञाओं का प्रतीक हैं।

6.10 पारिभाषिक शब्दावली

1- सप्तपदी -सात वचन

2- ग्रन्थि – गाँठ

3-वर वर्ण – वर (दूल्हा) का पूजन

4- वामांगी – कन्यादान व पाणीग्रहण के पश्चात कन्या वर की वामांगी कहलाती है

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.ग , 2.ग , 3.ख , 4.ग , 5.ग, 6.ग , 7.ग , 8.ग , 9.ग , 10.ख

6.12 सहायक पाठ्य सामग्री

वैदिक ग्रंथ

I. ऋग्वेद - विवाह सूक्त में पाणिग्रहण का उल्लेख मिलता है।

II. अथर्ववेद - विवाह एवं गृहस्थ जीवन से संबंधित मंत्रों में पाणिग्रहण का संकेत मिलता है।

2. गृह्यसूत्र

आश्वलायन गृह्यसूत्र - पाणिग्रहण संस्कार की विधि एवं मंत्रों का विस्तार से वर्णन।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र - विवाह संस्कार के अंतर्गत पाणिग्रहण का स्पष्ट विधान।

बौधायन गृह्यसूत्र - पाणिग्रहण एवं उससे जुड़े वैदिक कर्मकांड का विवरण।

3. स्मृति ग्रंथ

मनुस्मृति - पाणिग्रहण के बिना विवाह को अपूर्ण माना गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति - विवाह विधियों और पाणिग्रहण के धार्मिक महत्व का वर्णन।

नारद स्मृति - दाम्पत्य जीवन के कर्तव्यों के संदर्भ में पाणिग्रहण का उल्लेख।

4. धर्मसूत्र एवं अन्य शास्त्र

गौतम धर्मसूत्र - विवाह संस्कार में पाणिग्रहण की अनिवार्यता।

विष्णु धर्मसूत्र - गृहस्थ धर्म एवं विवाह विधियों का विवेचन।

5. **कर्मकाण्ड के ग्रंथ-:**

I. हिंदू संस्कार - पं. राजबली पाण्डेय

ii.भारतीय संस्कृति के संस्कार - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

iii.वैदिक संस्कार विधि - सत्यव्रत सामश्रमी

iv.संस्कार एवं संस्कृति- रामनारायण शुक्ल

v.कर्मकाण्ड प्रदीप

vi.कर्मकाण्ड भाष्कर

vii.कर्मठ गुरु

viii.कर्मकाण्ड भाष्कर

ix.कर्मकाण्ड दिवाकर

x. वैदिक संस्कार पद्धति

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.पानिग्रहण संस्कार से आप क्या समझते हैं।

2. सप्तपदी में सात वचनों का उल्लेख से क्या आशय है।

3. विवाह का मुख्य प्रयोजन शास्त्रों के अनुसार क्या है विस्तार – पूर्वक लिखिए।

4. आज के परिप्रेक्ष्य में विवाह संस्कार को आप कैसे देखते हैं स्पष्ट कीजिए।

इकाई 7 गृहस्थाश्रम की उपादेयता

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उदेश्य
7.3 विषय परिचय
7.4 श्रीमद् भागवतमहा पुराण में चार आश्रमों का वर्णन
7.5 भागवतमहा पुराण में गृहस्थाश्रम की उपादेयता
7.6 वेदों में गृहस्थधर्म की उपादेयता
7.6.1 गृहस्थ आश्रम में मानवीय मूल्यों का उदय
7.6.2. यज्ञ और कर्म का आधार:-
7.6.3. सामाजिक व्यवस्था की रक्षा:-
7.6.4. दान और अतिथि धर्म:-
7.6.5. आध्यात्मिक उन्नति का साधन
.7.7 गृहस्थाश्रम मानव सभ्यता की आधार शिला
7.8 गृहस्थाश्रम का महत्व
7.8.1 धर्मशास्त्रों व पौराणिक ग्रन्थों में उल्लेख गृहस्थाश्रम की उपादेयता :-
7.8.2 गृहस्थाश्रम की प्रमुख उपादेयता :-
7.10 सारांश
7.11 पारिभाषिक शब्दावली
7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.13 संदर्भित पाठ्य सामग्री
7.14 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-223 शिक्षणोत्तरसंस्कार के द्वितीय खण्ड की सप्तम इकाई है, जिसका शीर्षक " **गृहस्थाश्रम की उपादेयता"** है । इससे पूर्व आपने पानिग्रहन संस्कार के विषय में जाना अब इसी क्रम में हम गृहस्थाश्रम के विषय में विस्तार पूर्वक जानेंगे, विवाह संस्कार के उपरान्त का वैवाहिक जीवन ही गृहस्थाश्रम कहलाता है । भारतीय सनातनी परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हेतु चार आश्रमों का वर्णन आता है । आईये इन चार पुरुषार्थों का संक्षिप्त परिचय जानते हैं - सनातन धर्म में जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है, वो इस प्रकार से हैं -ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ये चारों आश्रम मानव जीवन के क्रमिक चरण हैं, जिनका उद्देश्य एवं लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की साधना को संतुलित रूप से पूरा करना है ।

1. ब्रह्मचर्य आश्रम (बाल्यावस्था से युवावस्था तक) अवधि: लगभग 25 वर्ष तक। मुख्य उद्देश्य: शिक्षा प्राप्त करना, आत्मसंयम सीखना, गुरु के मार्गदर्शन में वेद और शास्त्रों का अध्ययन। कर्तव्य: गुरुसेवा, विद्या अर्जन, अनुशासन और संयम। महत्व: यह जीवन की नींव है, जहाँ व्यक्ति ज्ञान और चरित्र का निर्माण करता है।

2. गृहस्थ आश्रम (युवावस्था से मध्यावस्था तक) अवधि: लगभग 25 से 50 वर्ष तक। मुख्य उद्देश्य: विवाह, परिवार का पालन-पोषण, समाज और धर्म की सेवा। कर्तव्य: धर्म, अर्थ और काम की साधना; परिवार, समाज और अन्य आश्रमों का पोषण। महत्व: इसे "सर्वोपकारक्षम आश्रम" कहा गया है क्योंकि अन्य तीन आश्रम गृहस्थ पर ही निर्भर है।

3. वानप्रस्थ आश्रम (मध्यावस्था से वृद्धावस्था तक) अवधि: लगभग 50 से 75 वर्ष तक। मुख्य उद्देश्य: सांसारिक जिम्मेदारियों से धीरे-धीरे निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक साधना की ओर बढ़ना। कर्तव्य: संतति को जिम्मेदारियाँ सौंपना, जंगल या एकांत में रहकर तप और ध्यान करना। महत्व: यह आश्रम सांसारिक जीवन और संन्यास के बीच का सेतु है। 4. संन्यास आश्रम (वृद्धावस्था से जीवन का अंतिम चरण अवधि: लगभग 75 वर्ष के बाद। मुख्य उद्देश्य: मोक्ष की प्राप्ति हेतु पूर्ण त्याग और ईश्वर साधना। कर्तव्य: सांसारिक मोह से मुक्त होकर केवल आत्मा और परमात्मा के चिंतन में लीन रहना। महत्व: यह जीवन का अंतिम लक्ष्य है, जहाँ व्यक्ति मोक्ष की ओर अग्रसर होता है । इसी प्रकार शास्त्रों में सबसे श्रेष्ठ आश्रम गृहस्थ आश्रम को कहा गया है , कहा भी जाता है – **धन्यो**

गृहस्थाश्रमो। इस इकाई के अंतर्गत हम सांगोपांग रूप से इसकी उपादेयता एवं कर्तव्यों महत्वों को समझेंगे।

7.2 उदेश्य

- ❖ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर्मकाण्ड के संस्कारों के महत्व और उसके प्रयोजन के विषय में बोध कर सकेंगे।
- ❖ इस इकाई में हम जानेगे कि सनातनी परम्परा में आश्रम व्यवस्थाओं का क्या महत्व है।
- ❖ गृहस्थ आश्रम के कर्तव्य क्या – क्या हैं इन सभी विषयों का विशद रूप से अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।
- ❖ चतुर्विध पुरुषार्थों की सिद्धि हेतु गृहस्थ आश्रम का क्या महत्व है , इस विषय का बोध कर सकेंगे।
- ❖ साथ ही शास्त्रों में गृहस्थाश्रम पालन की विधियाँ क्या है जान पाएंगे।
- ❖ एक सद् गृहस्थी का जीवन कैसे होना चाहिए इन नियमों व कर्तव्यों का भी बोध हो सकेगा।

7.3 विषय परिचय

भारतीय परम्परा में गृहस्थाश्रम (परिवारिक जीवन) भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण और 'सर्वोच्च' चरण है, क्योंकि यह समाज और अन्य सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) का आधार है, जहाँ व्यक्ति विवाह के माध्यम से परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्य निभाता है, धन का उत्पादन कर सबका पोषण करता है, तथा संयम, सेवा, और नैतिकता के साथ जीवन जीकर आध्यात्मिक उन्नति (मोक्ष) की नींव रखता है, जो इसे जीवन का एक 'तपोवन' बनाता है। इसी आश्रम का लक्ष्य चतुर्विध पुरुषार्थों की सिद्धि के साथ-साथ देव-पितृ ऋणों से भी मुक्त होना महत्वपूर्ण कर्तव्य है। क्यूंकि विवाह का मुख्य प्रयोजन गृहस्थाश्रम के साथ-साथ संतानोत्पति कर पितृ ऋण चुकाना होता है , संतानों को भी कुलाचार के अनुरूप सद संस्कार देना परम कर्तव्य है। गृहस्थ के नियमों का पालन करना पारिवारिक , सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करना आदि अपने आप में एक तपस्या है। हिंदू धर्म के पौराणिक और मध्ययुगीन साहित्य एतिहासिक ग्रंथों में गृहस्थ अवस्था को सामाजिक संदर्भ में सभी अवस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है; क्योंकि इस अवस्था में मनुष्य न केवल सदाचारी जीवन व्यतीत करते हैं, बल्कि वे भोजन और धन का उत्पादन

भी करते हैं जो जीवन की अन्य अवस्थाओं में लोगों का भरण-पोषण करता है, साथ ही विवाह करके संतानोत्पत्ति भी करते हैं, जो मानवीय सभ्यता को आगे बढ़ाती है।

7.4 श्रीमद्द भागवतमहा पुराण में चार आश्रमों का वर्णन

हमारे पुराणों भी गृहस्थआश्रम के विषय में विशद वर्णन मिलता है। भागवतमहापुराण के सप्तम स्कंध के द्वादश अध्याय में चारों आश्रमों का धर्म वर्णन देवर्षि नारद जी धर्मराज युधिष्टर को इस प्रकार दे रहे हैं –**"बह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम्"**। नारदजी बोले-हे धर्मराज ! हे युधिष्ठिर ! ब्रह्मचारी को जितेन्द्रिय रहते हुए गुरु-गृह में निवास करना चाहिए। दास के समान गुरु-सेवा में तत्पर रहता हुआ उनसे दृढ़ प्रेम रखे। सायंकाल एवं प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और सब देवताओं की उपासना करे। मौन रहता हुआ सनातन ब्रह्म का ध्यान तथा गायत्री का जप करे। गुरु केआदेश पर दत्तचित्त होकर वेदाध्ययन करे तथा उसके पास आते-जाते समय प्रणाम करे। मेखला मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड और कमण्डलु को धारण कर हाथ में कुश ग्रहण कर कन्धे पर यज्ञोपवीत पहिने। प्रातः सायं भिक्षाटन द्वारा प्राप्त अन्न को गुरु के लिए अर्पण करे और गुरु उसे जो कुछ दे दें उसे ही खाकर सन्तोष करे अथवा कुछ न दे तो बिना खाये ही रह जाय। इस प्रकार परमित भोजन, सुशीलता, चतुरता, श्रद्धा और इन्द्रिय-संयम रखे और स्त्रियों से प्रयोजन हो उतना ही व्यवहार रखे। स्त्री-विषयक वार्ताओं से दूर रहे और गृहस्थ से जाना आना न रखे क्योंकि इन्द्रियाँ यतियों के मन भी अपहृत हो जाते हैं। सम्बन्धित किसी कार्य के लिए घर में ऐसी बलवती होती हैं कि जिनके द्वारा अपने बालों को न संभाले, तैल न मले, उवटन न करे, मल-मल कर स्नान न करे, अजन न आँजे और यदि गुरुपत्नी युवती हो तो उससे वार्तालाप न करे।

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान्।
सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत्॥

क्योंकि स्त्री अग्नि के समान और पुरुष घृतकुम्भ के समान है। इस लिए आवश्यक प्रयोजन के अतिरिक्त अपनी पुत्री के पास भी एकान्त में न बैठे। हे राजन् ! ब्रह्मचारी के जो धर्म बताये हैं, गृहस्थों और यतियों को भी उनका पालन करना चाहिए। गृहस्थ को गुरुसेवा के अतिरिक्त ऋतुकाल में स्त्री-सेवा का विधान है। गुरु के यहाँ निवास करता हुआ ब्रह्मचारी विद्या प्राप्त करके और शक्ति हो तो गुरु को इच्छा अनुसार गुरु-दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से गृहस्थाश्रम अथवा संन्यासाश्रम में प्रवेश करे अथवा आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत को पालन करता हुआ गुरु-गृह में ही निवास करे। इस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, यती या गृहस्थ ज्ञान-विज्ञान से युक्त होकर प्रभु का चिन्तन करता हुआ परब्रह्म को प्राप्त हो

जाता है। **"वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान् मुनिसम्मतान्" ।** अब मैं मुनि-सम्मत वानप्रस्थ धर्म का वर्णन करता हूँ, जिसका पालन करने वाले मुनिजन बिना प्रयास ही ऋषियों के लोक को प्राप्त हो जाते हैं। असमय के पके हुए अन्न को न खाये, वरन् सूर्य या अग्नि से पके अन्न का ही सेवन करे । वन में उत्पन्न नीवारे आदि के द्वारा यथा समय चरु और पुरोडाश से होम करे। नया अन्न मिल जाये तो पुराने को छोड़ दे। अग्नि की रक्षा के लिए कुटी अथवा पर्वत गुफा में रहे और स्वयं शीत, वायु, अग्नि, वर्षा या उष्णता को सहन करे। केश, मूँछ, नख, दाढ़ी, रोम, जटा, कमण्डलु, मृगचर्मा, डण्ड, वल्कल आदि से समन्वित रहता हुआ अग्निहोत्र की सामग्री सदा पास रखे । हे राजन् ! इस प्रकार मुनि बन कर बारह, आठ, चार, दो अथवा एक वर्ष तक वन में निवास करे। यदि वानप्रस्थाश्रम में कोई रोग आदि संकट उपस्थित हो जाय और कोई क्रिया शरीर से न बन सके तो अनशन द्वारा ही जीवनयापन करे। इससे पूर्व अग्निहोत्र विषयक अग्नियों को शरीर में धारण कर, शरीर को उसकी उत्पत्ति के कारणों में लीन कर दे। शरीर के छिद्रों को आकाश में, श्वांस को वायु में, उष्णता को तेज में, रक्त, थूक, पीव को जल में तथा अस्थि आदि कठिन पदार्थों को पृथिवी में लीन करे । वाणी और उसके कर्म को अग्नि में हाथ और उनके कर्मों को इन्द्र में, पाँव और उनके कर्म विष्णु में, उपस्थ और उसके कर्म को प्रजापति में, वायु और उसके कर्म को मृत्यु में, श्रोत्र और उसके कर्म को दिशाओं में, त्वचा और उसके कर्म को वायु में, चक्षु को रूप सहित तेज में, जिह्वा को वरुण सहित जल में, घाण को अश्विनीकुमारों के सहित पृथिवी में, मन को मनोरथ सहित चन्द्रमा में, बुद्धि और उसके विषय बोध को ब्रह्मा में, अहंकार और उसकी क्रिया को रुद्र में तथा जीव, गुण और देवताओं को परब्रह्म में लीन करे । पृथिवी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को महत्तत्व की माया में और माया को ब्रह्म में लय करे। हे राजन् ! इस प्रकार चैतन्य रूप आत्मा ही शेष रह जाता है । परब्रह्म रूप मानता हुआ अद्वैत भाव से स्थित हो काष्ठ के जलने पर धधकती हुई अग्नि के समान विराम को प्राप्त हो जाय ।

7.5 भागवतमहा पुराण में गृहस्थाश्रम की उपादेयता

भागवत पुराण के सप्तम स्कंध के त्रयोदश अध्याय में नारद – युधिष्टर सम्बाद में नारद जी युधिष्टर को गृहस्थधर्म की उपादेयता बता रहे हैं और कह रहे हैं- युधिष्ठिर बोले- हे देवर्षे । गृहस्थाश्रम के बन्धन में पड़ा मेरे जैसा मन्द बुद्धि सन्यस्तपद को प्राप्त कर सके, वह उपाय कहिए-**"गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् 'गृहोचिताः** । नारदजी बोले हे राजन् ! गृहस्थ को उसी आश्रम से सम्बन्धित उचित कर्म करने चाहिए । जो कर्म करे उन्हें भगवान् को अर्पण करता हुआ सन्त सेवा में लगा रहे । प्रभु की

अवतार कथा रूपी अमृतधारा का पान श्रद्धा सहित करे और स्त्री-पुत्रादि की ममता भी धीरे-धीरे त्याग दे। शरीर और घर से प्रयोजन मात्र का ही व्यवहार रखे। ब्रह्मरूप से प्रेम-व्यवहार दिखाता हुआ मन में आसक्ति को न आने दे। धन्य-धान्य आदि का उपयोग भी उतना करे, जितना देव-योग से प्राप्त हो जाय। जितने में उदर-पूर्ति हो जाय-उतने में ही सन्तुष्ट हो जाय। उससे अधिक की लालसा करने वाला व्यक्ति चोर के समान दण्डनीय है। मृग, ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, सर्प, बिच्छू, पक्षी, मक्खी आदि जितने भी मनुष्य जाति के लिए हितकर या अहितकर जीव हैं, उन सबको पुत्र के समान माने। घर में निवास करता हुआ भी धर्म, अर्थ या काम के लिए परिश्रम न करे वरन् जो स्वयं प्राप्त हो, उसी में सन्तोष करे।**"आश्वाघान्ते ऽवसायिभ्यः कामान् संविभजेद यथा"** । हे राजन् ! श्वान, श्वपच, चाण्डाल आदि के लिए भी उस उसके भागानुसार अन्नादि देता रहे और अपनी सेवाकारिणी भार्या को अतिथि सेवा में नियुक्त करे। जिस स्त्री के लिए कभी मनुष्य को अपने प्राणों से भी हाथ घोना पड़ सकता है तथा जिसके लिए पुरुष अपने पिता या गुरु की भी हत्या कर सकता है, उस स्त्री का त्याग कर देने वाला पुरुष अपने भगवान् को शीघ्र ही अपने अधीन कर लेता है। जिस देह की अन्तिम गति भस्म, कृमि या विष्ठा होने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, उस तुच्छ देह के सुख के निमित्त जिस स्त्री से प्रेम किया जाता है, वह पापिष्ठा स्त्री और असंग आत्मा में कितना अन्तर है ? प्रारब्ध से प्राप्त अन्न का जो अंश पंचयज्ञ के पश्चात् शेष रहे, उसी से अपना निर्वाह करे और उस पर जो शेष बचे उसके प्रति ममता न करे । इस प्रकार करने वाला ही परमहंसों की गति को प्राप्त होता है। देवता, ऋषि, मनुष्य, मृत, पित्तर तथा अन्य जीवों को अपने उपार्जित घन के द्वारा जो पृथक् पृथक् पूजता है वह पुरुष साक्षात् भगवान् नारायण का ही पूजन करता है। **"यज्ञादिक साधन सहित, निज सामर्थ्य प्रमाण । भजन करे भगवान् का, तो होवे कल्याण ।।** किन्तु यज्ञभोक्ता भगवान् ब्राह्मण भोजन कराने से और भी अधिक प्रसन्न होते हैं इसलिए ब्राह्मण, देवता, मनुष्य एवं अन्यान्य जीवों को तथा योग्य दान या मान से सत्कृत करता हुआ उनके हृदय में निवास करने वाले भगवान् का पूजन करे । द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को आश्वित कृष्ण पक्ष में अपने माता-पितादि स्वर्गवासियों का श्राद्ध करना चाहिए । हे राजन् ! दक्षिणायन, उत्तरायन, विषुव, व्यतीहात, अमावस्या, पूर्णिमा, ग्रहण-काल, अक्षय तृतीया, अक्षय नवमी, माघ नक्षत्र वाली माघ मास की पूर्णिमा और अन्य मासों की भी अपने-अपने नाम वाले नक्षत्र काल में पड़ने वाली पूर्णिमायें आदि तिथियाँ श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ कही गई हैं। वे श्राद्ध के लिए ही नहीं, सब प्रकार के कल्याणार्थ उत्तम हैं। हे राजन् ! पुत्र अथवा अपने संस्कार दिवसों पर मंगल कर्म करे तथा अपने प्रियजन बान्धवादि के दाह संस्कार दिवसों पर श्राद्ध आदि कल्याणकारी कर्म करने चाहिए। अब धर्मयुक्त स्थानों के विषय में कहता हूँ, उसे सुनो- **"बिम्बं**

भगनतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम्" । सम्पूर्ण चराचर जीवों के निवास-भूत परमेश्वर की प्रतिमा जहाँ हो यथा तप, दया और विद्यादि गुणों वाले ब्राह्मणों का जहाँ निवास हो वह देश अत्यन्त पवित्र समझो। गंगातट, पुष्करादि सरोवर, सन्तजनों का निवास स्थल, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिषारण्य, रामेश्वर, प्रभास, द्वारिका, काशी, मथुरा, पम्पासर, विन्दुसार, महेन्द्र और मलयाचल आदि तथा अन्य अनेक तीर्थस्थल पवित्र माने गये हैं। क्योंकि उन स्थलों में भगवान् का साक्षात् निवास रहता है। हे राजन् ! विद्वानों ने भगवान् को ही सर्व प्रमुखपात्र मान्य किया है, क्योंकि वे ही जगन्मय हैं। तुम्हारे यज्ञ में सभी देवता, ऋषि, महात्मा, ब्रह्मपुत्रादि उपस्थित थे, किन्तु सर्वप्रथम पूजनीय भगवान् श्रीकृष्ण का ही सर्वमान्य रूप में पूजन किया गया इस ब्रह्माण्ड रूपी महान वृक्ष के मूल वहीं देवाधिदेव हैं उनके पूजन से सभी का पूजन हो जाता है । यह पशु, पक्षी, ऋषि, देवता, मनुष्य आदि को उन्हीं ने रचा है तथा स्वयं ही उन सब में जीव रूप से विद्यमान हैं। किन्तु पशु-पक्षी आदि की अपेक्षा मनुष्य में उनका अंश अधिक है। उन मनुष्यों में भी जिनमें ईश्वरीय अंश की अधिकता विशेष रूप से हो, उन्हें उत्तम पात्र समझो । हे युधिष्ठिर ! पूर्वकाल में ऐसा ही नियम था, किन्तु लोगों के द्वारा अवज्ञा होने पर त्रेता के आदि में भगवान् की मूर्तियाँ कल्पित की गईं। जिनका पूजन प्रारम्भ हुआ । यह ठीक भी है कि मूर्ति से ध्यान भी ठीक प्रकार हो सकता है । **यथा- भगवान् । "भक्तियोग-युग ध्यान से, हों प्रसन्न किन्तु चित्त कैसे रमे, प्रतिमा बिना न ध्यान ।।** इसलिए प्रतिमा को भगवान् मान कर पूजन करना चाहिए । मनुष्यों में वे ब्राह्मण ही श्रेष्ठ पात्र हो सकते हैं, जो तप, विद्या, वेदाभ्यास आदि में सन्तुष्ट रहते हैं । ऐसे ब्राह्मण ही अपने चरण-रज से त्रैलोक्य को पवित्र करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के परम प्रिय देव-रूप में धरती पर स्थित हैं ।

7.6 वेदों में गृहस्थधर्म की उपादेयता

वेदों में गृहस्थ धर्म की उपादेयता (महत्त्व और उपयोगिता) को अत्यंत उच्च स्थान दिया गया है। वैदिक परंपरा में चार आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-माने गए हैं, जिनमें गृहस्थ आश्रम को समाज और धर्म का आधार कहा गया है।

7.6.1 गृहस्थ आश्रम में मानवीय मूल्यों का उदय

मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में हमारे वेदों में गृहस्थ आश्रम ही वह अवस्था है जहाँ धर्म, अर्थ और काम-इन तीनों पुरुषार्थों की साधना एक साथ होती है। अन्य तीनों आश्रमों का पोषण गृहस्थ द्वारा ही

संभव है। ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ, दान और अतिथि सत्कार गृहस्थ के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं।

7.6.2. यज्ञ और कर्म का आधार:- वैदिक धर्म यज्ञप्रधान है और यज्ञ करने का अधिकारी मुख्यतः गृहस्थ ही होता है ।अग्निहोत्र, दर्श–पूर्णमास, सोमयाग आदि कर्म गृहस्थ द्वारा किए जाते हैं।यज्ञ से देवता तृप्त होते हैं और समाज में समृद्धि आती है।यजुर्वेद में गृहस्थ को यज्ञकर्ता के रूप में विशेष महत्त्व दिया गया है।

7.6.3. सामाजिक व्यवस्था की रक्षा:- गृहस्थ धर्म के अंतर्गतविवाह, संतानोत्पत्ति और परिवार पालन

समाज की निरंतरता और संस्कृति का संरक्षण होता है। अथर्ववेद में गृह को शांति, समृद्धि और सौहार्द का केंद्र बताया गया है।

7.6.4. दान और अतिथि धर्म:- वेदों में अतिथि देवो भवः की भावना निहित है।संन्यासी, ब्राह्मण, अतिथि और निर्धन-इन सबका पालन गृहस्थ करता है।दान, अन्नदान और आश्रय देना गृहस्थ का प्रमुख कर्तव्य है।

7.6.5. आध्यात्मिक उन्नति का साधन:- वेदों में यह स्पष्ट है कि मोक्ष केवल संन्यास से ही नहीं,बल्कि कर्तव्यपरायण गृहस्थ जीवन से भी प्राप्त हो सकता है। निष्काम कर्म करते हुए गृहस्थ आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। वेदों में गृहस्थ धर्म की उपादेयता इसलिए मानी गई है क्योंकि- वही यज्ञ, दान और समाज का आधार है वही अन्य आश्रमों का पोषक है वही धर्म और संस्कृति की निरंतरता बनाए रखता है इसलिए वेदों में गृहस्थ आश्रम को "सर्वाश्रम-आधार" कहा गया है।

7.7 गृहस्थाश्रम मानव सभ्यता की आधार शिला

गृहस्थाश्रम मानव जीवन और सभ्यता की आधारशिला है ; यह समाज का आर्थिक और भौतिक केंद्र है; यहीं से अन्य आश्रमों के लिए भोजन, धन और समर्थन मिलता है। कर्तव्यों की पूर्ति: इस आश्रम में व्यक्ति विवाह कर, परिवार की ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए धर्म और नैतिकता का पालन करता है, जिससे पितृ ऋण और मातृ ऋण जैसे ऋण चुकाए जाते हैं। तप और साधना: इसे एक तपस्या स्थल माना गया है, जहाँ व्यक्ति इंद्रियों पर संयम रखता है, अतिथि सत्कार करता है, और सेवा-भाव से जीवन जीता है, जिससे आध्यात्मिक विकास होता है। नैतिक और सामाजिक विकास:

गृहस्थ जीवन व्यक्ति को संतुलन, जिम्मेदारी और सामाजिक मूल्यों (सत्य, अहिंसा, दान) का पाठ सिखाता है, जो उसे चरित्रवान बनाता है। आर्थिक स्थिरता और समृद्धि: यह खेती, व्यापार और धन-अर्जन का केंद्र है, जिससे परिवार और समाज की आर्थिक ज़रूरतें पूरी होती हैं; शुद्ध धन और नैतिक मूल्यों से देश का कल्याण होता है। मोक्ष का मार्ग: आदर्श गृहस्थ जीवन, दूसरों की सेवा और प्रेमपूर्ण कर्मों के माध्यम से, व्यक्ति को सांसारिक बंधनों से मुक्त कर मोक्ष के लिए तैयार करता है, जैसा कि भगवद्गीता और अन्य शास्त्रों में कहा गया है। संक्षेप में, गृहस्थाश्रम वह भूमि है जहाँ व्यक्ति अपने सांसारिक कर्तव्यों को निभाते हुए, दूसरों के लिए जीते हुए, अपने और समाज के उत्थान के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति भी करता है, और यही कारण है कि इसे चारों आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है।

7.8 गृहस्थाश्रम का महत्व

गृहस्थाश्रम के महत्व पर हमारे धर्मशास्त्रकारों ने अनेक रुपों में प्रकाश डाला है। गौतम (3.3) का कहना है कि संतति उत्पन करने के कारण गृहस्थ अन्य तीनों, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास, आश्रमों की आधारशिला है। मनु ने इसी भाव को इससे भी सुंदर रुप से प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं आगे चलकर वे कहते हैं , जिस प्रकार छोटी- बड़ी नदियाँ अंत में समुद्र में मिल जाती है, उसी प्रकार सभी आश्रमों के लोग गृहस्थ से ही आश्रय पाते हैं। महा. शांति (270.6- 7) में कहा गया है "जिस प्रकार सभी प्राणी माता पर आश्रित होते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थों पर आश्रित होते हैं। इसी आधार पर तो कालिदास ने भी इसे "सर्वोपकारक्षम आश्रम' कहा है (रघु. 5.10)। इसी संदर्भ में शांति पर्व में अन्यंत्र (12.12) में कहा गया है" "यदि तराजू पर तोला जाय तो एक पलड़े पर अकेला गृहस्थाश्रम रहेगा और दूसरे पर अन्य तीनों आश्रम एक साथ।' इसके विषय में लगभग यही भाव रामा.(अयोध्या. 106.12) में भी पाया जाता है। महा.(शांति. 270.11-12) कपिल ने उन लोगों की कठोर शब्दों में भत्र्सना की है, जो यह भ्रम फैलाते हैं कि गृहस्थ को मोक्ष संभव नहीं। इसकी श्रेष्ठता एवं उच्चता के महत्व की सभी शास्त्रकारों द्वारा मुक्तकंठ से प्रशंसा की गयी है। गृहस्थाश्रम को हमारे धर्मशास्त्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसे जीवन का आधार और अन्य तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) की नींव माना गया है।

7.8.1 धर्मशास्त्रों व पौराणिक ग्रन्थों में उल्लेख गृहस्थाश्रम की उपादेयता :-

हमारे धर्मशास्त्रों में पुराणों में तथा सहित्य में गृहस्थ आश्रम के विषय में विशद वर्णन मिलता है ।

महर्षि गौतम ने गृहस्थाश्रम को संतति उत्पन्न करने वाला और अन्य आश्रमों की आधारशिला बताया है , वही मनु ने इसे समुद्र की उपमा दी है और कहा जैसे - सभी नदियाँ अंततः समुद्र में मिलती हैं, वैसे ही सभी आश्रम गृहस्थ पर आश्रित हैं। इसी सन्दर्भ में महाभारत के शांति पर्व में महर्षि वेदव्यास कहते हैं कि सभी प्राणी जैसे- माता पर आश्रित होते है; वैसे ही सभी आश्रम गृहस्थ पर निर्भर हैं। महा कवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में गृहस्थाश्रम को **"सर्वोपकारक्षम आश्रम"** कहा है। महाभारत के शांति पर्व के अनुसार यदि तराजू पर तोला जाए तो एक ओर अकेला गृहस्थाश्रम और दूसरी ओर अन्य तीन आश्रम मिलकर भी उसके बराबर नहीं हैं। रामायण के अयोध्या काण्ड में भी इसी भाव को दोहराया गया है। कपिल भी उन लोगों की आलोचना की जो मानते हैं कि गृहस्थ को मोक्ष संभव नहीं। गृहस्थाश्रम ही समाज और धर्म की धुरी है। अन्य आश्रमों का पालन गृहस्थ के सहयोग से ही संभव है। इसे जीवन का सबसे उपकारी और संतुलनकारी आश्रम माना गया है। मोक्ष की संभावना गृहस्थ के लिए भी उतनी ही है जितनी अन्य आश्रमों के लिए। तात्पर्य यह है कि हमारे जितने भी वैदिक साहित्य एवं पुराण हैं प्राय: उन सभी ने गृहस्थ आश्रम को प्रमुख प्रधानता दी है।

7.8.2 गृहस्थाश्रम की प्रमुख उपादेयता :-

शास्त्रकारों के अनुसार हमारे अन्य आश्रमों का आधार: गृहस्थ ही है ,गृहस्थ अपने पुरुषार्थ एवं मेहनत से जो भी कमाता है या अर्जित करता है उससे केवल वह अपने परिवार का ही भरणपोषण नहीं करता ; अपितु पशु – पक्षी , खेत- खलियान समस्त जीव जंतुओं का दायित्व निर्वहन करता है , वह भोजन, आश्रय और धन का उत्पादन करता है, जिस पर ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी भी निर्भर रहते हैं। कर्तव्यों की पूर्ति (पंच महायज्ञ): यह वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति अपने ऋणों (देव, ऋषि, पितृ, मनुष्य, भूत) को चुकाता है - जैसे देवताओं के लिए यज्ञ, ऋषियों के लिए स्वाध्याय, पितरों के लिए संतानोत्पत्ति और दान, मनुष्यों के लिए अतिथि सत्कार और प्राणियों के लिए अहिंसा आदि भी निहित है।

नैतिक और आध्यात्मिक विकास: यह तपोभूमि है जहाँ व्यक्ति संयम, सेवा, सहिष्णुता और संतुलन साधना सीखता है, जिससे वह मोक्ष के योग्य बनता है। सामाजिक और आर्थिक स्थिरता: यह कृषि और उत्पादन का केंद्र है, जो समुदाय को पोषण देता है और समाज में आर्थिक स्थिरता लाता है, जो सदाचारपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक ह। जीवन का संतुलन: परिवार के दायित्वों को निभाते हुए, गृहस्थ सांसारिक सुखों और आध्यात्मिक उन्नति के बीच संतुलन बनाना सीखता है, जिससे जीवन

में पूर्णता आती है। प्रेम और सेवा का अभ्यास: गृहस्थ जीवन प्रेमपूर्ण सेवा (भगवत -सेवा) का अभ्यास करने के लिए एक उपयुक्त स्थिति है, जो व्यक्ति को आध्यात्मिक जगत की ओर ले जाती है। सार रूप में जाने तो; गृहस्थाश्रम केवल सांसारिक जीवन नहीं; बल्कि एक तपस्या है जहाँ व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए, समाज और आध्यात्मिकता दोनों का पोषण करता है, और अंततः शाश्वत शांति व स्वतंत्रता प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ता है।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. सनातनी परम्परा में आश्रम कितने होते हैं।

क. चार ख. पाँच ग. दश घ. कोई नहीं।

2. धर्म की दृष्टि से पुरुषार्थ कितने होते हैं।

क. चार, ख. दो, ग. तीन, घ. कोई नहीं।

3. विवाह संस्कार का मुख्य प्रयोजन क्या है।

क. सन्तान उत्त्पत्ति, ख. यज्ञ करना , ग. दान करना घ. कोई नहीं।

4. चार आश्रमों में नहीं आता है।

क. वृद्ध आश्रम, ख. सन्यास ग. वानप्रस्थ

7.10 सारांश

मानव जीवन में गृहस्थ आश्रम की उपादेयता क्या है आपने इस इकाई के अंतर्गत किया। वस्तुत: गृहस्थाश्रम ही सभी मानवीय पहलूवों की नींब रखता है या यूँ कहें कि जीवन का प्रमुख केन्द्रविंदु है।

हमारे जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हेतु भी गृहस्थ ही निमित्त है सार रूप से समझे तोगृहस्थाश्रम केवल परिवार और समाज का पोषण ही नहीं करता, बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थों की साधना का आधार भी है। गृहस्थाश्रम का प्रादुर्भाव विवाह संस्कार से उदय होता है, और भारतीय संस्कृति के सभी संस्कार भी प्राय: इसी आश्रम में अनुकरणीय और अनुपालनीय होते हैं।क्योंकि यह अन्य सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) का आधार है, जो भोजन, आर्थिक स्थिरता और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक संसाधन प्रदान करता है; इसमें व्यक्ति परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों (ऋण) का पालन करते हुए सत्य, अहिंसा,

दान और सेवा जैसे नैतिक मूल्यों का अभ्यास करता है, जिससे वह जीवन के दुखों को पार कर परम आनंद और स्वतंत्रता प्राप्त करने योग्य बनता है.

7.11 पारिभाषिक शब्दावली

1.पुरुषार्थ चतुष्टय – धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष चार पुरुषार्थ

2.उपादेयता -नितान्त आवश्यकता महत्व युक्त।

3.तुच्छ – निम्न स्तर

4. श्रेष्ठ – महानतम गुण युक्त

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.क.

2.क

3.क

4.क

7.13 संदर्भित पाठ्य सामग्री

1.श्रीमद भागवत महापुराण सप्तम स्कंध (अध्याय 12-14)

2. गौतम धर्म सूत्र

3. शुल्व सूत्र

4. याज्ञवल्क्य स्मृति।

5. कठोपनिषद्

6. रघुवंश महाकाव्य

7. महाभारत (महाभारत, शांति पर्व 270.11-12):

8. रामायण (अयोध्या कांड 106.12):

9. विकिपीडिया (अंतर्जाल)

7.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.गृहस्थाश्रम की महत्व को लिखिए।

2. चारों आश्रमों का विस्तार पूर्वक परिचय दीजिए।

3.गृहस्थाश्रम की विशेषता के विषय में लिखे।

4. समाज के लिए गृहस्थाश्रम की क्या भूमिका है विस्तार पूर्वक लिखिए।